ओ३म्

भगवती-भाष्य-समलंकृतम्

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

(सचित्र)



अनुवादक, सम्पादक एवं टिप्पणिकर्ता

परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेदरत्न, वेदमार्तण्ड



विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

किष्किन्धाकाण्डम्





विषय-



अथ किष्किन्धाकाण्डम्

प्रथमः सर्गः (१)

श्रीराम की विरह-वेदना—

स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलाम्।
रामः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः॥ १॥

जब लक्ष्मणसहित श्रीराम कमलदल और मीन[1] आदि जल-जन्तुओं से परिपूर्ण पम्पा नामक सरोवर पर पहुँचे तब सीता का स्मरण कर वे विकल हो गये और विलाप करने लगे।

तस्य दृष्ट्वैव तां हर्षादिन्द्रियाणि चकम्पिरे।
स कामवशमापन्नः सौमित्रिमिदमब्रवीत्॥ २॥

जब उन्होंने कमल-वन से सुशोभित उस पुष्करिणी की रमणीयता को अच्छी प्रकार देखा तब हर्षातिरेक से उनकी सारी इन्द्रियाँ कम्पायमान हो गईं। वे कामातुर होकर अपने भाई लक्ष्मण से बोले—

सौमित्रे शोभते पम्पा वैडूर्यविमलोदका।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः॥ ३॥

हे लक्ष्मण! देखो नाना प्रकार के वृक्षों से शोभित, खिले हुए कमलों से परिपूर्ण वैदूर्य मणि के समान निर्मल जलवाली यह पुष्करिणी कैसी सुशोभित हो रही है?

सौमित्रे पश्य पम्पायाः काननं शुभदर्शनम्।
यत्र राजन्ति शैलाभा द्रुमाः सशिखरा इव॥ ४॥

हे लक्ष्मण! पम्पा के निकटवर्ती दर्शनीय कानन को तो देखो जहाँ के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष पर्वतीय चोटी के समान शोभायमान हो रहे हैं।

मां तु शोकाभिसंतप्तं माधवः पीडयन्निव।
भरतस्य च दुःखेन वैदेह्या हरणेन च॥ ५॥
शोकार्तस्यापि मे पम्पा शोभते चित्रकानना।
व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा॥ ६॥

एक ओर मुझ शोक-सन्तप्त को वसन्त ऋतु पीड़ित-सी कर रही है, दूसरी ओर भरतजी का अयोध्या से बाहर नन्दिग्राम में व्रतोपवास आदि कर कष्ट सहन करना और सीता का हरण—मुझे पीड़ित कर रहे हैं।

---

१. इस सम्बन्ध में निम्न किंवदन्ती बहुत प्रसिद्ध है। राम ने मछलियों से परिपूर्ण उस सरोवर पर एक बुगले को देखकर लक्ष्मणजी से कहा—

पश्य लक्ष्मण पम्पायां वकं परं धार्मिकम्।
मन्दं-मन्दं पदं धत्ते जीवानां वधशङ्कया॥

हे लक्ष्मण! पम्पा-सरोवर के तट पर इस परम धार्मिक बगुले को देखो। प्राणियों का वध न हो जाए, अतः यह कैसे धीरे-धीरे अपने पैरों को रख रहा है।

इस वार्त्तालाप को सुनकर एक मछली बोल उठी। वस्तुतः पशु, पक्षी या जल-जन्तु कभी बोलते नहीं। उनकी वाणी में कवि ही बोलता है। मछली के बोलने का तात्पर्य यह है कि कवि अपनी बात को उसके मुख से कहला रहा है।

वकं प्रशंससे राम येनाहं निष्कुली कृता।
सहवासी विजानीयात् चरित्रं सहवासिनाम्॥

अहो! राम! तुम उस बगुले की प्रशंसा कर रहे हो जिसने मेरे सारे कुल को समाप्त कर दिया है। ठीक है, पास बैठनेवाला ही अपने सहवासी के चरित्र को जान सकता है।



इतना होने पर भी निर्विकार एवं शीतल जलवाली, अनेक प्रकार के पुष्पों से सुशोभित और अनेक प्रकार के वनों से युक्त यह पम्पा-सरोवर मुझे अत्यन्त रमणीय लग रहा है।

अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः।
सीतया विप्रहीणस्य शोकसन्दीपनो मम॥ ७॥

हे लक्ष्मण! यह वसन्त ऋतु विविध प्रकार के पक्षियों के कलरव से निनादित होकर मेरे सीता-वियोग-जन्य शोक को और अधिक सन्दीप्त कर रहा है।

मां हि पल्लवताम्रार्चिर्वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति।
न हि तां सूक्ष्मपक्ष्माक्षीं सुकेशीं मृदुभाषिणीम्॥ ८॥
अपश्यतो मे सौमित्रे जीवितेऽस्ति प्रयोजनम्।
अयं हि दयितस्तस्याः कालो रुचिरकाननः॥ ९॥

हे लक्ष्मण! यह वसन्तरूपी अग्नि जिसमें लाल-लाल पत्रोंरूपी ज्वालाएँ उठ रही हैं, मुझे अवश्य ही भस्म कर डालेगी। उस कमल-नयनी, सुन्दर केशोंवाली, मधुरभाषिणी सीता को देखे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। यह वसन्त ऋतु सीता को अत्यन्त प्रिय था, क्योंकि इस ऋतु में सम्पूर्ण वन पत्र-पुष्प और फलों से अत्यन्त कमनीय हो जाता है।

अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः।
स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैः स्फाटिकैरिव॥ १०॥

हे लक्ष्मण! देखो, ये इधर-उधर नृत्य करते हुए मयूर कैसे शोभायमान हो रहे हैं। वायु से कम्पायमान इनके पंख ऐसी शोभा दे रहे हैं, मानो स्फटिक के बनाये हुए झरोखे हों।

नदन्ति कामं मुदिताः शकुनाः सङ्घशः कलम्।
आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम॥ ११॥

झुण्ड-के-झुण्ड ये पक्षिगण परस्पर एक-दूसरे का आह्वान करते हुए, आनन्दपूर्वक चहकते हुए मेरे काम की उन्मादावस्था की वृद्धि कर रहे हैं।

वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया।
नूनं परवशा सीता साऽपि शोचत्यहं यथा॥ १२॥

इस समय जहाँ मेरी प्राणप्रिया सीता निवास कर रही है यदि वहाँ भी इसी प्रकार वसन्त हुआ तो वह भी पराधीन होकर वैसे ही शोकातुर हो रही होगी जैसा मैं यहाँ शोकातुर हो रहा हूँ।

मयि भावस्तु वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः।
ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः॥ १३॥

क्योंकि सीता का वास्तविक शुद्ध प्रेम मुझमें है और मेरा भी शुद्ध हार्दिक प्रेम सीता में है।

यदि दृश्येत सा साध्वी यदि चेह वसेमहि।
स्पृहयेयं न शक्राय नायोध्यायै रघूत्तम॥ १४॥

हे रघुकुलश्रेष्ठ लक्ष्मण! यदि वह पतिव्रता सीता यहाँ कहीं दिखाई दे जाए और मैं उसके साथ यहाँ वास करूँ तो मुझे न इन्द्रपद की चाह हो और न अयोध्या के राज्य की आकांक्षा हो।

तच्चार्वञ्चितपक्ष्माक्षं सुगन्धि शुभ्रमव्रणम्।
अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मनो मम॥ १५॥

इस समय कमल के समान नेत्रोंवाले, सुगन्धित और व्रणरहित सीता के उस कमनीय मुखमण्डल को देखे बिना मेरा मन व्याकुल हो रहा है।

किं नु वक्ष्यामि कौसल्यामयोध्यायां नृपात्मज।
क्व सा स्नुषेति पृच्छन्तीं कथं चातिमनस्विनीम्॥ १६॥

हे राजकुमार लक्ष्मण! अयोध्या लौटने पर जब माता कौसल्या मुझसे पूछेगी कि मनस्विनी मेरी पुत्रवधू सीता कहाँ है और वह कैसी है तब मैं उसे क्या उत्तर दूँगा?

गच्छ लक्ष्मण पश्य त्वं भरतं भ्रातृवत्सलम्।
न ह्यहं जीवितुं शक्तस्तामृते जनकात्मजाम्॥ १७॥

हे लक्ष्मण! अब तुम अयोध्या लौट जाओ और भ्रातृ-वत्सल भाई के दर्शन करो। मैं सीता के बिना अब जीवित नहीं रह सकता।

इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत्।
उवाच लक्ष्मणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम्॥ १८॥

महात्मा श्रीराम को इस प्रकार अनाथों की भाँति विलाप करते देख विकाररहित लक्ष्मण ये युक्तियुक्त



वचन बोले—

संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम्।
नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम्॥ १९॥

हे राम! आपका कल्याण हो। धैर्य धारण कीजिए, शोक को त्याग दीजिए। हे पुरुषोत्तम! आप जैसे निर्मल बुद्धिवालों की बुद्धि ऐसी मन्द तो नहीं होनी चाहिए।

स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रिये जने।
अतिस्नेहपरिष्वाङ्गाद्वर्तिरार्द्रापि दह्यते॥ २०॥

'संयोग वियोगपूर्वक होता है' इस अटल सिद्धान्त को सम्मुख रखते हुए आप सीता-वियोग-जन्य दुःख और उसके प्रति अत्यधिक स्नेह को छोड़ दीजिए, क्योंकि देखो न, अत्यन्त स्नेहयुक्त (तैल में पड़ने से) गीली बत्ती भी जल जाती है।

यदि गच्छति पातालं ततो ह्यधिकमेव वा।
सर्वथा रावणस्तावन्न भविष्यति राघव॥ २१॥

हे रघुकुलशिरोमणि राम! अब रावण चाहे पाताल में चला जाए अथवा उससे भी बढ़कर किसी अन्य गुप्त स्थान में जा छिपे—अब वह बच नहीं सकता, वह निश्चय ही मारा जायेगा।

स्वास्थ्यं भद्रं भजस्वार्य त्यज्यतां कृपणा मतिः।
अर्थो हि नष्टकार्यार्थैर्नायत्नेनाधिगम्यते॥ २२॥

हे भाई! आप स्वस्थ हो जाइए। इस दीनता और कायरता को त्याग दीजिए, धैर्य धारण कीजिए, क्योंकि उद्योग के अभाव में अर्थ की सिद्धि कदापि नहीं हो सकती। (खोई हुई वस्तु बिना प्रयत्न के नहीं मिलती।)

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम्।
सोत्साहस्यास्ति लोकेऽस्मिन्न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥ २३॥

हे आर्य राम! उत्साह में बड़ा बल होता है, उत्साह से बढ़कर और कोई बल नहीं है। उत्साही एवं उद्योगी पुरुषों के लिए इस संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु।
उत्साहमात्रमाश्रित्य सीतां प्रतिलभेमहि॥ २४॥

उत्साही पुरुष किसी भी कार्य को करने में घबराते नहीं हैं। हम भी उत्साह का आश्रय लेकर सीताजी को अवश्य प्राप्त कर लेंगे।

त्यज्यतां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः।
महात्मानं कृतात्मानमात्मानं नावबुध्यसे॥ २५॥

आप महात्मा और कृतविद्य होकर भी अपने स्वरूप को क्यों नहीं पहचानते। आप शोक को त्याग कर कामी जनों जैसी इस वृत्ति को परे फेंकिए।

एवं सम्बोधितस्तत्र शोकोपहतचेतनः।
न्यस्य शोकं च मोहं च ततो धैर्यमुपागमत्॥ २६॥

जब लक्ष्मणजी ने शोकाक्रान्त राम को इस प्रकार समझाया तब श्रीराम ने शोक और मोह को त्यागकर धैर्य धारण किया।

सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिन्त्यपराक्रमः।
रामः पम्पां सुरुचिरां रम्यां पारिप्लवद्रुमाम्॥ २७॥

लक्ष्मण के समझाने पर अचिन्त्य पराक्रमी राम स्थिरचित्त होकर हिलते हुए वृक्षों से युक्त उस अत्यन्त मनोहर-पम्पा सरोवर को घूम-घूमकर देखने लगे।

◀ द्वितीयः सर्गः ▶ (२)

सुग्रीव का शंकित होकर हनुमान् को राम-लक्ष्मण के समीप भेजना—

तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्कितोऽभवत्॥ १॥

उत्तम अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, महात्मा, उन दोनों वीर भाई राम और लक्ष्मण को पम्पा-सरोवर पर घूमते हुए देखकर वानरराज सुग्रीव अत्यन्त भयभीत हुआ।



ततः स सचिवेभ्यस्तु सुग्रीवः प्लवगाधिपः।
शशंस परमोद्विग्नः पश्यंस्तौ रामलक्ष्मणौ॥ २॥

तब भय से आक्रान्त वानरराज सुग्रीव ने राम और लक्ष्मण को देखते हुए अपने मन्त्रियों से यह कहा—

एतौ वनमिदं दुर्गं बालिप्रणिहितौ ध्रुवम्।
छद्मना चीरवसनौ प्रचरन्ताविहागतौ॥ ३॥

ये दोनों निश्चय ही बाली के भेजे हुए हैं। ये छलपूर्वक अपने वेश को छिपाकर वल्कल वस्त्र धारणकर इस दुर्गम वन में घूमते-फिरते यहाँ आये हैं।

ततस्तं भयसंविग्नं बालिकिल्बिषशङ्कितम्।
उवाच हनुमान् वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः॥ ४॥

तब बाली के षड्यन्त्र से आशंकित एवं डरे हुए राजा सुग्रीव से वाणीविशारद हनुमान् इस प्रकार बोले—

अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवङ्गम।
लघुचित्ततयाऽऽत्मानं न स्थापयसि यो मतौ॥ ५॥

हे वानरराज! आश्चर्य है कि आप अपने चित्त की चञ्चलता के कारण वस्तुतः बन्दरपन=क्षुद्रता का परिचय दे रहे हैं, जबकि इस अवस्था में आप को धैर्यपूर्वक स्थिर-बुद्धि से कार्य लेना चाहिए।

सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः।
ततः शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह॥ ६॥

हनुमान् के इस सारगर्भित शुभ वचन को सुनकर सुग्रीव हनुमान्जी से अति मनोहर शब्दों में इस प्रकार बोले—

दीर्घबाहू विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ।
कस्य न स्याद्भयं दृष्ट्वा ह्येतौ सुरसुतोपमौ॥ ७॥

हे हनुमन्! दीर्घबाहू, विशाल नेत्र, धनुष-बाण और कृपाणधारी देवपुत्रों के समान इन दोनों को देखकर किसको भय नहीं होगा?

बालिप्रणिहितावेतौ शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ।
राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः॥ ८॥

इन दोनों नरश्रेष्ठों को देखकर मुझे तो यही शंका हो रही है कि ये दोनों बाली के भेजे हुए हैं, क्योंकि राजाओं के अनेक प्रकार के मित्र होते हैं, अतः इन पर सहसा विश्वास करना उचित नहीं है।

तौ त्वया प्राकृतेनेव गत्वा ज्ञेयौ प्लवङ्गम।
इङ्गितानां प्रकारैश्च रूपव्याभाषणेन च॥ ९॥

अतः हे हनुमन्! तुम साधारण वेष में उनके समीप जाकर उनके हाव-भाव चेष्टा, आकृति और भाषण के द्वारा पता लगाओ कि ये दोनों कौन हैं?

वचो विज्ञाय हनुमान् सुग्रीवस्य महात्मनः।
पर्वतादृष्यमूकात्तु पुप्लुवे यत्र राघवौ॥ १०॥

महात्मा सुग्रीव का आदेश पाकर हनुमान् ऋष्यमूक पर्वत से शीघ्रतापूर्वक उधर चल पड़े जहाँ राम-लक्ष्मण थे।

कपिरूपं परित्यज्य हनुमान् मारुतात्मजः।
भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः॥ ११॥

जाते समय पवनसुत हनुमान् ने अपने वानरवेष का परित्याग कर अपने-आपको छिपाने के लिए और राम को धोखा देने के लिए याचक का रूप धारण कर लिया।

ततः स हनुमान् वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया।
विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च॥ १२॥
आबभाषे तदा वीरौ यथावत्प्रशशंस च।
सम्पूज्य विधिवद्वीरौ हनुमान् मारुतात्मजः॥ १३॥

तत्पश्चात् हनुमान्जी राम-लक्ष्मण के समीप जा, उन्हें नम्रतापूर्वक प्रणाम कर, मधुर एवं मनोहर वाणी से उन दोनों की प्रशंसा करने लगे। उन दोनों वीरों की यथार्थ प्रशंसा कर तथा उन दोनों की विधिवत् पूजाकर पवनसुत हनुमान्जी बोले—

राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ।
देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ॥ १४॥

आप दोनों राजर्षि सदृश देवताओं के समान, तपस्वी एवं कठोर व्रतधारी हैं। हे उत्तम वर्णयुक्त! आप दोनों महानुभाव इस प्रदेश में किसलिए आये



हैं?

पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ।
अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिवागतौ॥ १५॥

आपके नेत्र कमल के समान हैं, आप वीर हैं और जटामण्डल धारण किये हुए हैं, समान आकृतिवाले आप दोनों कौन हैं? कहीं आप दोनों देवलोक=त्रिविष्टप् से तो नहीं आये हैं।

यदृच्छयेव सम्प्राप्तौ चन्द्रसूर्यौ वसुन्धराम्।
विशालवक्षसौ वीरौ मानुषौ देवरूपिणौ॥ १६॥

स्वेच्छापूर्वक कहीं सूर्य और चन्द्रमा तो इस धराधाम पर नहीं उतर आये हैं? (अर्थात् आपका सौन्दर्य सूर्य और चन्द्रमा की कान्ति को भी म्लान कर रहा है) विशाल वक्षस्थलों से युक्त साधारण मनुष्य के रूप में आप दोनों कोई देवता तो नहीं हैं?

सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ।
आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः॥ १७॥

आप दोनों वीरों के कन्धे सिंह के समान हैं। आप महा-उत्साही और मदमत्त वृषभों के तुल्य हैं। आपकी भुजाएँ गदा के समान गोल, दृढ़ और लम्बी हैं।

सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषिताः।
उभौ योग्यावहं मन्ये रक्षितुं पृथिवीमिमाम्॥ १८॥

सम्पूर्ण आभूषणों से विभूषित करने योग्य आपके सुन्दर शरीर आभूषणों से रहित क्यों हैं? मैं समझता हूँ आप दोनों व्यक्ति इस सम्पूर्ण पृथिवी की रक्षा करने में समर्थ हैं।

इमे च धनुषी चित्रे श्लक्ष्णे चित्रानुलेपने।
प्रकाशेते यथेन्द्रस्य वज्रे हेमविभूषिते॥ १९॥

आपके ये दोनों धनुष अद्भुत, चिकने और चित्रकारी किये हुए हैं। ये ऐसे दिखाई दे रहे हैं जैसे इन्द्र के स्वर्णविभूषित वज्र हों।

सम्पूर्णा निशितैर्बाणैस्तूणाश्च शुभदर्शनाः।
जीवितान्तकरैर्घोरैः श्वसद्भिरिव पन्नगैः॥ २०॥

तीखे बाणों से पूरिपूर्ण आपके तरकस भी बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं, जिनमें जीवन का अन्त कर देनेवाले सर्प के समान भयंकर बाण भरे हुए हैं।

महाप्रमाणौ विस्तीर्णौ तप्तहाटकभूषितौ।
खड्गावेतौ विराजेते निर्मुक्ताविव पन्नगौ॥ २१॥

लम्बी-चौड़ी और सुनहरी मूठोंवाली आपकी तलवारें केंचुली छोड़े हुए सर्प की भाँति दमक रही हैं।

सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद्वानरयूथपः।
वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद् भ्रमति दुःखितः॥ २२॥

(दोनों भाइयों की प्रशंसा कर हनुमान् अब अपना प्रयोजन कहते हैं—) सुग्रीव नामक एक धर्मात्मा और वीर वानरों का मुखिया है, जो अपने भाई द्वारा अपमानित करके निकाला जाने पर दुःखी होकर संसार में मारा-मारा फिर रहा है।

प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मनः।
राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान्नाम वानरः॥ २३॥

उन महात्मा वानरराज सुग्रीव द्वारा भेजा हुआ मैं आपके पास आया हूँ। उसके वानरों में मुख्य में हनुमान् नामक वानर हूँ।

युवाभ्यां सह धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति।
तस्य मां सचिवं विद्धि वानरं पवनात्मजम्॥ २४॥

वे धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनों भाइयों के साथ मैत्री करना चाहते हैं। मुझे आप पवन का पुत्र और सुग्रीव का मन्त्री समझिए।

एतत् श्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
प्रहृष्टवदनः श्रीमान् भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम्॥ २५॥

हनुमान् के इन वचनों को सुनकर श्रीराम अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने समीप स्थित लक्ष्मणजी से बोले—

सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमुपागतः॥ २६॥

हे लक्ष्मण! ये उन वानरराज के मन्त्री हैं जिनसे मैं स्वयं मिलना चाहता था, सो यह उनका मन्त्री स्वयं ही मेरे पास आ गया है।



तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम्।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिन्दमम्॥ २७॥

हे लक्ष्मण! तुम वाक्यविशारद, शत्रुओं का मान मर्दन करनेवाले, स्नेह की मूर्ति सुग्रीव के सचिव हनुमान् से मधुर वाणी में वार्तालाप करो।

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम्॥[१] २८॥

ये हनुमान् उच्चकोटि के विद्वान् हैं, क्योंकि ऋग्वेद के अध्ययन से अनभिज्ञ, यजुर्वेद के ज्ञान से हीन और सामवेद के बोध से शून्य व्यक्ति ऐसी परिष्कृत बातें नहीं कह सकता।

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्[१]॥ २९॥

निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेक बार अध्ययन किया है। यही कारण है कि इनके इतने समय बोलने में इन्होंने कोई भी त्रुटि नहीं की है।

न मुखे नेत्रयोर्वापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥ ३०॥

इतना ही नहीं बोलते समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंहें तथा शरीर के अन्य अङ्गों में कहीं कोई विकृति या दोष दिखाई नहीं दिया।

अविस्तरमसन्दिग्धमविलम्बितमद्रुतम्।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमे स्वरे॥ ३१॥

इनका भाषण संक्षिप्त, परन्तु सन्देहरहित है। अपने कथन को व्यक्त करते हुए न तो इन्होंने शीघ्रता की है और न विलम्ब ही किया है। इनके हृदय का वाक्य जब कण्ठ में आकर बाहर निकलता है तब उसका स्वर न बहुत ऊँचा होता है और न बहुत नीचा, अपितु मध्यम होता है।

संस्कारक्रमसम्पन्नामद्रुतामविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम्॥ ३२॥

इनकी वाणी व्याकरण से संस्कारित, क्रम-सम्पन्न तथा न बहुत धीमी है और न बहुत तेज। इनकी वाणी हृदय को हर्षित करनेवाली और मधुर है।

अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि॥ ३३॥

उर, कण्ठ और मूर्द्धा—इन तीन स्थानों से व्यक्त की गई इनकी विचित्र एवं रमणीय वाणी हाथ में तलवार लेकर मारने के लिए उद्यत शत्रु के कठोर हृदय को भी पिघला देगी।

एवंविधो यस्य दूतो न भवेत्पार्थिवस्य तु।
सिध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ॥ ३४॥

हे निष्पाप लक्ष्मण! जिस राजा के पास ऐसे दूत न हों उन्हें अपने कार्यों में सफलता कैसे प्राप्त हो सकती है?

एवमुक्तस्तु सौमित्रिः सुग्रीवसचिवं कपिम्।
अभ्यभाषत वाक्यज्ञो वाक्यज्ञं पवनात्मजम्॥ ३५॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर बोलनेवालों में श्रेष्ठ वाग्विशारद लक्ष्मण भाषणपटु सुग्रीव के सचिव पवनपुत्र हनुमान् से बोले—

विदिता नौ गुणा विद्वन् सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव चावां मार्गावः सुग्रीवं प्लवगेश्वरम्॥ ३६॥

हे विद्वन्! हम लोगों को महात्मा सुग्रीव के सब गुण विदित हैं। हम दोनों उन्हीं वानरराज सुग्रीव को खोजते फिर रहे हैं।

यथा ब्रवीषि हनुमन् सुग्रीववचनादिह।
तत्तथा हि करिष्यावो वचनात्तव सत्तम॥ ३७॥

हे हनुमन्! आप सुग्रीव के आदेशानुसार जैसा

---

१. जो लोग हनुमान् को बन्दर कहते हैं वे तनिक इन श्लोकों का अवलोकन करें। क्या बन्दर ऋग्वेदादि वेदों का अध्ययन करते हैं और क्या जंगलों में कूदनेवाले बन्दर व्याकरण का अध्ययन करते हैं। हनुमान् पूँछवाले एवं लाल मुखवाले बन्दर नहीं थे जैसांकि उन्हें कुछ मूर्ख लोग समझते हैं। वे वानरजाति के थे और वेदवेदाङ्ग के विद्वान् थे।



हमसे कह रहे हैं (अर्थात् सुग्रीव हम लोगों से मैत्री करना चाहते हैं।) हे सज्जनश्रेष्ठ! आपके कथनानुसार हम वैसा ही करेंगे, अर्थात् हम भी सुग्रीव से मैत्री करना चाहते हैं।

➤ तृतीयः सर्गः ➤ (३)

हनुमान् का राम-लक्ष्मण को लेकर सुग्रीव के पास जाना—

ततः परमसंहृष्टो हनुमान् प्लवगर्षभः।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं रामं वाक्यविशारदम्॥ १॥

लक्ष्मण के वार्तालाप और सुग्रीव से मित्रता करने की बात जानकर वानरश्रेष्ठ हनुमान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और वाणीविशारद श्रीराम से इस प्रकार कहने लगे—

किमर्थं त्वं वनं घोरं पम्पाकाननमण्डितम्।
आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम्॥ २॥

हे राम! पम्पा सरोवर के तीरवर्ती रमणीय वृक्षों से सुशोभित, नाना प्रकार के अजगरों तथा बाघ और चीतों से परिपूर्ण अत्यन्त दुर्गमनीय इस घोर वन में अपने भाई के साथ आप किसलिए आये हैं?

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो रामचोदितः।
आचचक्षे महात्मानं रामं दशरथात्मजम्॥ ३॥

हनुमान्जी के ये वचन सुन श्रीराम द्वारा प्रेरित लक्ष्मणजी ने हनुमान् को दशरथनन्दन श्रीराम का परिचय देना आरम्भ किया।

राजा दशरथो नाम द्युतिमान् धर्मवत्सलः।
तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः॥ ४॥

हे हनुमन्! दशरथ नाम के एक तेजस्वी एवं धर्मवत्सल महाराज हैं। उनके ये प्रथम पुत्र श्रीराम के नाम से लोक में प्रसिद्ध हैं।

राज्यलक्षणसम्पन्नः संयुक्तो राज्यसम्पदा।
राज्याद् भ्रष्टो वने वस्तुं मया सार्धमिहागतः॥ ५॥

इनमें राजाओं के सभी लक्षण विद्यमान हैं। ये राज्य-सम्पत्ति से युक्त हैं, परन्तु राज्य से भ्रष्ट होकर मेरे साथ वन में निवास करने के लिए इस वन में आये हैं।

भार्यया च महातेजाः सीतयाऽनुगतो वशी।
दिनक्षये महातेजाः प्रभयेव दिवाकरः॥ ६॥

पाणिगृहीत आर्या सीता ने भी जितेन्द्रिय, महायशस्वी श्रीराम का उसी प्रकार अनुगमन किया जिस प्रकार सूर्यास्त के समय सूर्य की प्रभा सूर्य का अनुगमन करती है।

अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः।
कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः॥ ७॥

मैं इनका छोटा भाई हूँ। इनकी कृतज्ञता और बहुमुखी ज्ञान आदि गुणों के कारण मैं इनका दास हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है।

रक्षसापहृता भार्या रहिते कामरूपिणा।
तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नी येनास्य सा हृता॥ ८॥

हम लोगों की अनुपस्थिति में इनकी धर्मपत्नी को कामरूपधारी कोई राक्षस हर ले गया है। जिस राक्षस ने इनकी धर्मपत्नी का अपहरण किया है हम अब तक उसका पता नहीं लगा पाये हैं।

एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः।
अहं चैव हि रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ॥ ९॥

हे हनुमन्! तुम्हारे पूछने पर मैंने यथातथ्य सब कुछ बतला दिया। अब मैं और श्रीराम दोनों सुग्रीव की शरण में हैं।

एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं करुणं साश्रुलोचनम्।
हनुमान् प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः॥ १०॥

जब लक्ष्मणजी ने दीन भाव से और आँखों में आँसू भरकर इस प्रकार कहा तब वाक्यविशारद हनुमान्जी बोले—

ईदृशा बुद्धिसम्पन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः॥ ११॥



हे लक्ष्मण! जिस प्रकार के बुद्धिमान्, क्रोध-रहित तथा जितेन्द्रिय महात्मा पुरुष की सुग्रीव को आवश्यकता थी, सौभाग्य से वे स्वयं ही उनके समीप उपस्थित हो गये हैं।

स हि राज्यात्परिभ्रष्टः कृतवैरश्च बालिना।
हृतदारो वने त्यक्तो भ्रात्रा विनिकृतो भृशम्॥ १२॥

वे सुग्रीव भी इस समय राज्य से भ्रष्ट हैं। बाली के साथ उनकी शत्रुता हो गई है। उनकी भी स्त्री छीन ली गई है। वे राजा सुग्रीव भी शत्रुरूप अपने भाई से भयभीत होकर वनों में इधर-उधर भटक रहे हैं।

करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः।
सुग्रीवः सह चास्माभिः सीतायाः परिमार्गणे॥ १३॥

वे सूर्यपुत्र सुग्रीव हम लोगों को साथ लेकर सीता की खोज करने में आप लोगों की सहायता अवश्य करेंगे।

इत्येवमुक्त्वा हनुमान् श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।
बभाषे साधु गच्छेम सुग्रीवमिति राघवम्॥ १४॥

सुमधुर एवं कोमल शब्दों में लक्ष्मणजी से ऐसा कहकर हनुमान् श्रीराम से बोले—अच्छा, आइए, हम सब सुग्रीव के पास चलें।

ततः स तु महाप्राज्ञो हनुमान् मारुतात्मजः।
पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुञ्जरः॥ १५॥

तदनन्तर महाबुद्धिमान् पवनपुत्र हनुमान् दोनों राजकुमारों को अपनी पीठ पर चढ़ा उन्हें सुग्रीव के पास ले गये।

❮ चतुर्थः सर्गः ❯ (४)

सुग्रीव के साथ राम की मित्रता—

ऋष्यमूकात्तु हनुमान् गत्वा तं मलयं गिरिम्।
आचचक्षे तदा वीरौ कपिराजाय राघवौ॥ १॥

श्रीराम और लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत पर छोड़ हनुमान् ऋष्यमूकपर्वत से मलयगिरि पर जाकर वानरराज सुग्रीव को वीरशिरोमणि राम-लक्ष्मण के सम्बन्ध में बतलाने लगे।

विशेष—ऐसा प्रतीत होता है कि राम-लक्ष्मण को देखकर सुग्रीव भय के कारण मलय पर्वत के किसी सघन स्थान में जा छिपे थे, अतः हनुमान्जी राम-लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत पर छोड़कर सुग्रीव को वास्तविकता बताने के लिए अकेले ही उनके पास गये थे।

अयं रामो महाप्राज्ञ सम्प्राप्तो दृढविक्रमः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा पितुर्निर्देशपारगः॥ २॥

हे महाप्राज्ञ! पिता की आज्ञा का पालन करने-वाले, दृढ़-विक्रमी श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण सहित यहाँ आये हैं।

तस्यास्य वसतोऽरण्ये नियतस्य महात्मनः।
रावणेन हृता भार्या स त्वां शरणमागतः॥ ३॥

संयमपूर्वक वन में वास करनेवाले इन महात्मा राम की धर्मपत्नी को रावण हर ले गया है, अतः अब ये आपकी शरण में आये हैं।

भवता सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
प्रतिगृह्यार्चयस्वैतौ पूजनीयतमावुभौ॥ ४॥

श्रीराम और लक्ष्मण पूजनीयतम हैं और आपसे मित्रता करना चाहते हैं। आप इन दोनों को ग्रहण कर इनका सत्कार कीजिए।

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं सुग्रीवो हृष्टमानसः।
दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्या प्रोवाच राघवम्॥ ५॥

हनुमान् की बातों को सुनकर सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न होकर और सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कर राम के समीप जा प्रेमपूर्वक बोले—

भवान् धर्मविनीतश्च विक्रान्तः सर्ववत्सलः।
आख्याता वायुपुत्रेण तत्त्वतो मे भवद्गुणाः॥ ६॥



आप धर्मात्मा, विनम्र-स्वभाव, पराक्रमी और सब पर कृपा करनेवाले हैं। आपके इन अनुपम गुणों के सम्बन्ध में हनुमान् ने मुझसे कहा है।

तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो।
यत्त्वमिच्छसि सौहार्दं वानरेण मया सह॥ ७॥

हे प्रभो! मैं वानरजाति का एक साधारण मनुष्य हूँ। मेरे साथ आपने जो मैत्री करनी चाही है यह आपने मुझे बहुत बड़ा सम्मान प्रदान किया है। इससे मुझे बड़ा लाभ होगा।

रोचते यदि वा सख्यं बाहुरेष प्रसारितः।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा॥ ८॥

यदि आपको मेरी मैत्री पसन्द है तो लीजिए मेरा हाथ फैला हुआ है। आप मेरे बढ़े हुए हाथ को अपने हाथ से पकड़कर ध्रुव मैत्री का परिचय दीजिए।

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवेणा सुभाषितम्।
स प्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना॥ ९॥

वानरराज सुग्रीव के इन सुन्दर वचनों को सुनकर श्रीराम ने प्रसन्न मन से सुग्रीव के हाथ को अपने हाथ से दबाया, अर्थात् हस्तालिंगन[१] किया।

हृद्यं सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पीडितम्।
ततो हनुमान् काष्ठयोः जनयामास पावकम्॥ १०॥

इतना ही नहीं राम ने प्रसन्न होकर सुग्रीव को हृदय से लगाकर गाढ़ आलिंगन किया। इतनी ही देर में हनुमान् ने दो अरणियों का मथकर अग्नि प्रकट की और—

तयोर्मध्येऽथ सुप्रीतो निदधे सुसमाहितः।
ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणीम्॥
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ॥ ११॥

उस अग्नि को उन दोनों, अर्थात् राम और सुग्रीव के मध्य में स्थापित कर दिया। हनुमान् द्वारा स्थापित उस प्रदीप्त अग्नि की उन दोनों ने प्रदक्षिणा[२] की। इस प्रकार सुग्रीव और राम की मैत्री हो गई।

ततः सुप्रीतमनसौ तावुभौ हरिराघवौ।
अन्योऽन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमुपजग्मतुः॥ १२॥

मैत्री होने के पश्चात् सुग्रीव और राम अत्यन्त प्रसन्न हो एक-दूसरे को देखने लगे, परन्तु एक-दूसरे को देखते हुए वे तृप्त नहीं होते थे।

त्वं वयस्योऽसि मे हृद्यो ह्येकं दुःखं सुखं च नौ।
सुग्रीवं राघवो वाक्यमित्युवाच प्रहृष्टवत्॥ १३॥

तदनन्तर श्रीराम ने प्रसन्न हो सुग्रीव से कहा—आप मेरे मित्र हैं, हृदय के प्यारे सखा है। आज से हम दोनों का दुःख-सुख समान है।

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।
प्रत्युवाच तदा रामं हर्षव्याकुललोचनः॥ १४॥

राम की बात सुनकर सुग्रीव ने प्रसन्न हो मधुर एवं स्निग्ध वाणी से, आँखों से हर्ष और व्याकुलता के आँसू बहाते हुए श्रीराम से कहा—

अहं विनिकृतो राम चरामीह भयार्दितः।
हृतभार्यो वने त्रस्तो दुर्गमे तदुपाश्रितः॥ १५॥

---

१. हस्तालिंगन की प्रथा वैदिक है। वेद, रामायण, महाभारत और पुराणों में हस्तालिंगन करने का वर्णन आता है। इस विषय में कुछ प्रमाण हमने 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' पुस्तक में दिये हैं, वहीं पढ़ें। एक नया प्रमाण यहाँ भी प्रस्तुत है—

गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवन्दितः।
यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः॥
समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः॥

—भागवत पु० १०।६५।४-५

श्रीकृष्ण के ज्येष्ठभ्राता बलरामजी जब द्वारिका से गोकुल को गये तब वहाँ उन्होंने बड़ों को प्रणाम किया, छोटों को आशीर्वाद दिया और समान वयवालों को गले लगाया तथा उनसे हँसते हुए हाथ मिलाया।

२. जो लोग सुग्रीव और हनुमान् आदि को बन्दर कहते हैं वे तनिक इस प्रकरण को देखें। क्या जंगली जानवर इसी प्रकार परस्पर मैत्री करते हैं?



हे राम! मैं बाली द्वारा छला जाकर और उसके द्वारा निर्वासित होकर, उसके डर से मारा-मारा फिर रहा हूँ। मेरी स्त्री छीन ली गई है। अब मैंने भयभीत होकर इस दुर्गम वन का आश्रय लिया है।

बालिना निकृतो भ्रात्रा कृतवैरश्च राघव।
बालिनो मे महाभाग भयार्तस्याभयं कुरु॥ १६॥

हे राघव! मेरे भाई बाली द्वारा निर्वासित करने पर मेरी यह दशा हुई है। वह मुझसे स्थिर शत्रुता रखता है। हे महाभाग! बाली के भय से आतंकित मुझे आप अभय प्रदान कीजिए।

एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः।
प्रत्यभाषत काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव॥ १७॥

सुग्रीव के ऐसा कहने पर तेजस्वी, धर्मज्ञ एवं धर्मवत्सल श्रीराम ने हँसते हुए सुग्रीव से कहा—

उपकारफलं मित्रं विदितं मे महाकपे।
बालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम्॥ १८॥

हे महाकपे! मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि मित्रता का फल उपकार होता है, अतः मैं तुम्हारी भार्या का अपहरण करनेवाले बाली का अवश्य वध करूँगा।

❮ पञ्चमः सर्गः ❯ (५)

आभूषणों की पहचान—

स तु तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्यात्मनो हितम्।
सुग्रीवः परमप्रीतः सुमहद्वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

अपने लिए हितकारी श्रीराम की बातों को सुनकर सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले—

अयमाख्याति मे राम सचिवो मन्त्रिसत्तमः।
हनुमान् यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः॥ २॥

हे राम! मन्त्रियों में श्रेष्ठ आपके सेवक हनुमान् ने वे सब बातें मुझे बता दी हैं जिनके कारण आप वन में आये हैं।

रक्षसापहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा।
त्वया वियुक्ता रुदती लक्ष्मणेन च धीमता॥ ३॥

हनुमान् ने मुझे यह भी बता दिया है कि—रुदन करती हुई आपकी धर्मपत्नी जनककुमारी सीता को राक्षस रावण उस समय हर कर ले गया, जिस समय आप और आपके भाई लक्ष्मण वहाँ उपस्थित नहीं थे।

अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतीमिव।
रसातले वा वर्तन्तीं वर्तन्तीं वा नभःस्थले॥ ४॥

मैं सीताजी को उसी प्रकार लाकर आपके अर्पण कर दूँगा जैसे राक्षसों के द्वारा आक्रान्त वेदवाणी का उद्धार हुआ था। मैं सीता को अवश्य छुड़ा लाऊँगा, चाहे वह पाताल में हो अथवा गगनमण्डल में।

त्यज शोकं महाबाहो तां कान्तामानयामि ते।
अनुमानात्तु जानामि मैथिली सा न संशयः॥ ५॥

हे महाबाहो! आप शोक का परित्याग कीजिए। मैं आपकी प्राणप्रिया को अवश्य ले आऊँगा। अनुमान से मैं यह समझ रहा हूँ कि वह निस्सन्देह मिथिला की राजकुमारी जानकी ही होगी।

ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा क्रूरकर्मणा।
क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम्॥ ६॥

मैंने क्रूरकर्मा राक्षस द्वारा हरकर ले जाते हुए एक स्त्री को देखा था। उस समय वह 'हा राम! हा लक्ष्मण!' इस प्रकार के शब्द कर रही थी।

स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा।
आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतटे स्थितम्॥ ७॥
उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च।
तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव॥ ८॥

वह रावण की गोद में नागिन की भाँति छट-पटा रही थी। इस पर्वत शिखर पर मुझ सहित पाँच वानरों को बैठा देखकर उसने अपनी चादर और उसमें बँधे हुए आभूषणों को मेरे समीप गिरा दिया। उन सबको



मैंने उठाकर रख छोड़ा है।

तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम्।
आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे॥ ९॥

यह सुनकर श्रीराम ने प्रियभाषी सुग्रीव से कहा—हे मित्र! तुम उन वस्तुओं को शीघ्र लाओ, देर क्यों कर रहे हो?

एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम्।
प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया॥ १०॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर सुग्रीव ने राम की प्रिय कामना को पूर्ण करने के लिए उस पर्वत की गहन गुहा में प्रवेश किया।

उत्तरीयं गृहीत्वा तु शुभान्याभरणानि च।
इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः॥ ११॥

शीघ्र ही उस उत्तरीय=चादर और आभूषणों को लाकर सुग्रीव ने कहा—"इन्हें देखिए"—ऐसा कहकर उन्हें श्रीराम को दिखलाया।

ततो गृहीत्वा तद्वासः शुभान्याभरणानि च।
अभवद् बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः॥ १२॥

उन वस्त्र और आभूषणों को हाथ में लेकर श्रीराम इस प्रकार सजल नेत्र हो गये जिस प्रकार चन्द्रमा कुहरे से आच्छादित हो गया हो।

अविचिछन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं वीक्ष्य पार्श्वतः।
परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे॥ १३॥

नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित करते हुए राम अपनी बगल में बैठे लक्ष्मण को देखकर दीनतापूर्वक विलाप करने लगे।

पश्य लक्ष्मण वैदेह्या संत्यक्तं ह्रियमाणया।
उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराद् भूषणानि च॥ १४॥

हे लक्ष्मण! देखो, हरण की जाती हुई सीता ने अपने शरीर पर से उतार कर यह उत्तरीय और आभूषण भूमि पर फेंके थे, तुम तनिक इन्हें पहचानो तो सही।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।
नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥ १५॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मणजी बोले—मैं इन कंकणों=बाजूबन्दों को नहीं जानता और कान के कुण्डलों को भी नहीं पहचानता। हाँ, मैं इन नूपुरों=बिछुओं को अवश्य ही पहचानता हूँ—ये निश्चितरूप से सीताजी के हैं, क्योंकि प्रतिदिन उनकी चरणवन्दना के समय मैं इन्हें देखा करता था।

विशेष—यह है आर्यावर्त की प्राचीन संस्कृति का आदर्श चरित्र! लक्ष्मणजी तेरह वर्ष तक वनों में सीताजी के साथ रहे, परन्तु उन्होंने कभी आँख उठाकर सीता की ओर देखा भी नहीं।

ततः स राघवो दीनः सुग्रीवमिदमब्रवीत्।
ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया॥ १६॥

लक्ष्मण के ऐसा कहने पर श्रीराम दीन होकर सुग्रीव से बोले—हे सुग्रीव! बताओ, हरण की जाती हुई सीता को तुमने किस देश की ओर ले जाई जाते हुए देखा था?

क्व वा वसति तद्रक्षो महद्व्यसनदं मम।
यन्निमित्तमहं सर्वान्नाशयिष्यामि राक्षसान्॥ १७॥

अथवा मुझे बतलाओ कि मुझे महान् संकट में डालनेवाला वह राक्षस कहाँ रहता है, जिसके कारण मुझे सम्पूर्ण राक्षसों का संहार करना पड़ेगा।

➤ षष्ठः सर्गः ➤ (६)

राम और सुग्रीव का परस्पर आश्वासन—

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणार्तेन वानरः।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं सबाष्पं बाष्पगद्गदः॥ १॥

दुःखी राम के ऐसा कहने पर वानर सुग्रीव हाथ जोड़कर आँखों में आँसू भर, गद्गद कण्ठ हो राम से बोले—



न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः।
सामर्थ्यं विक्रमं वापि दौष्कुलेयस्य वा कुलम्॥ २॥

मैं उस पापी राक्षस के निवास-स्थान से सर्वथा अनभिज्ञ हूँ। मैं उस कुलाधम राक्षस के सामर्थ्य, पराक्रम और कुल के सम्बन्ध में भी कुछ नहीं जानता।

सत्यं तु प्रतिजानामि त्यज शोकमरिन्दम।
करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम्॥ ३॥

इन सब बातों की जानकारी न होने पर भी हे शत्रुतापी राम! मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं इस प्रकार का प्रयत्न करूँगा जिससे सीता आपको अवश्य प्राप्त होगी, अतः अब आप शोक को त्याग दीजिए।

रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम्।
तथास्मि कर्ता नचिराद्यथा प्रीतो भविष्यसि॥ ४॥

राक्षसोंसहित रावण को मारकर और अपने सैन्यबल के पुरुषार्थ का परिचय देकर मैं शीघ्र सीता को प्राप्त कर लूँगा, जिससे आपको प्रसन्नता होगी।

अलं वैकल्व्यमालम्ब्य धैर्यमात्मागतं स्मर।
त्वद्विधानामसदृशमीदृशं बुद्धिलाघवम्॥ ५॥

आप दैन्य को छोड़कर अपने अन्तर्भूत धैर्य का स्मरण करें। आप जैसे महापुरुषों के लिए इस प्रकार का बुद्धि-लाघव उचित नहीं।

मयाऽपि व्यसनं प्राप्तं भार्याहरणजं महत्।
न चाहमेवं शोचामि न च धैर्यं परित्यजे॥ ६॥

मुझे भी स्त्री हरे जाने का दुःख प्राप्त हुआ है, किन्तु न तो मैं इस प्रकार का शोक करता हूँ और न मैंने धैर्य ही छोड़ा है।

व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तके।
विमृशन्वै स्वया बुद्ध्या धृतिमान्नावसीदति॥ ७॥

धैर्यवान् पुरुष दुःख=स्वजन-वियोग के समय, धननाश के समय, भय उपस्थित होने पर और प्राणों पर संकट उपस्थित हो जाने पर भी अपनी बुद्धि से कार्य लेते हैं और इसीलिए वे कभी दुःखी नहीं होते।

बालिशस्तु नरो नित्यं वैक्लव्यं योऽनुवर्तते।
स मज्जत्यवशः शोके भाराक्रान्तेव नौर्जले॥ ८॥

मूर्ख लोग ही विपत्ति में दीनता का परिचय दिया करते हैं। ऐसे लोग विवश होकर शोकसागर में ऐसे ही डूब जाते हैं जैसे भार से लदी हुई नौका जल में डूब जाती है।

ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम्।
तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि॥ ९॥

शोक करनेवाले व्यक्तियों को कभी सुख एवं शान्ति प्राप्त नहीं होती। शोकातुर व्यक्तियों का तेज नष्ट हो जाता है, अतः आपको शोक नहीं करना चाहिए।

शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः।
स शोकं त्यज राजेन्द्र धैर्यमाश्रय केवलम्॥ १०॥

हे राजेन्द्र! शोकाकुल व्यक्तियों का जीवन संशय में पड़ जाता है, अतः आप शोक को त्याग कर धैर्य का आश्रय लीजिए।

हितं वयस्यभावेन ब्रूमि नोपदिशामि ते।
वयस्तां पूजयन् मे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ ११॥

मैं केवल मित्रता के कर्तव्य से प्रेरित होकर आपसे आपके हित की बात कह रहा हूँ—मैं आपको उपदेश नहीं दे रहा हूँ। मेरी मैत्री का आदर करते हुए आपको शोक नहीं करना चाहिए।

मधुरं सान्त्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः।
मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयत्॥ १२॥
प्रकृतिस्थस्तु काकुत्स्थः सुग्रीववचनात्प्रभुः।
संपरिष्वज्य सुग्रीवमिदं वचनमब्रवीत्॥ १३॥

जब सुग्रीव ने इस प्रकार के मधुर शब्दों में श्रीराम को सान्त्वना प्रदान की तब श्रीराम ने आँसुओं से भीगे अपने मुखमण्डल को वस्त्र के छोर से पोंछ, सुग्रीव के वचनों से स्वस्थ हो तथा अपनी स्वाभाविक मुद्रा में आकर सुग्रीव का प्रेमपूर्वक आलिंगन करते हुए यह कहा—

कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च।
अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया॥ १४॥

हे सुग्रीव! आपत्ति के समय स्नेही तथा हितैषी



मित्र को जो कार्य करना चाहिए आपने सब कुछ उसके अनुकूल ही किया है।

एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वया सखे।
दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन् काले विशेषतः॥ १५॥

हे मित्र! तुम्हारे सान्त्वना प्रदान करने से इस समय मैं स्वस्थ हो गया हूँ। सचमुच तुम्हारे जैसे मित्र का मिलना दुर्लभ है और वह भी ऐसी विपत्ति के समय।

किं तु यत्नस्त्वया कार्यो मैथिल्याः परिमार्गणे।
राक्षसस्य च रौद्रस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ १६॥

परन्तु हे मित्र! आपको सीता के अन्वेषण करने और उस भयंकर दुरात्मा राक्षस रावण का पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिए।

मया च यदनुष्ठेयं विस्रब्धेन तदुच्यताम्।
वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं सम्पद्यते त्वयि॥ १७॥

मुझसे तुम अपना जो कार्य कराना चाहते हो वह भी निःसंकोच होकर मुझे बतला दीजिए। मैं तुम्हारे सभी मनोरथ उसी प्रकार पूर्ण कर दूँगा जिस प्रकार उपजाऊ खेत में वर्षा के द्वारा भरपूर अन्न और वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं।

मया च यदिदं वाक्यमभिमानात्समीरितम्।
तत्त्वया हरिशार्दूल तत्त्वमित्युपधार्यताम्॥ १८॥

हे वानरश्रेष्ठ! मैंने शौर्याभिमान से जो बातें आपके समक्ष कही हैं उन्हें आप सर्वथा सत्य एवं तथ्यपूर्ण ही समझिए क्योंकि—

अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन।
एतत्ते प्रतिजानामि सत्येनैव च ते शपे॥ १९॥

मैंने अपने जीवन में न तो कभी पहले मिथ्या भाषण किया है और न आगे कभी करूँगा। आपके कार्य को पूरा करने की मैं प्रतिज्ञा करता हूँ और सत्य की शपथ खाता हूँ।

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवो वानरैः सचिवैः सह।
राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञातं विशेषतः॥ २०॥

श्रीराम के इन वचनों को सुनकर, विशेष कर उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा पर विचार कर सुग्रीव अपने मन्त्रियोंसहित अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसने अपने-आपको सफल मनोरथ माना।

❮ सप्तमः सर्गः ❯ (७)

राम द्वारा बालिवध की प्रतिज्ञा और सुग्रीव द्वारा बाली के साथ वैर होने का वृत्तान्त सुनाना—

परितुष्टस्तु सुग्रीवस्तेन वाक्येन वानरः।
लक्ष्मणस्याग्रतो राममिदं वचनमब्रवीत्॥ १॥

श्रीराम की उपर्युक्त बातों से पुलकित-गात सुग्रीव अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ और लक्ष्मण के समक्ष पुनरपि राम से यह वचन कहने लगा—

शक्यं खलु भवेद्राम सहायेन त्वयानघ।
सुरराज्यमपि प्राप्तुं स्वराज्यं किं पुनः प्रभो॥ २॥

हे निष्पाप राम! आपकी सहायता से मैं स्वर्ग का राज्य भी प्राप्त कर सकता हूँ, अपने राज्य की तो बात ही क्या है।

सोऽहं सभाज्यो बन्धूनां सुहृदां चैव राघव।
यस्याग्निसाक्षिकं मित्रं लब्धं राघववंशजम्॥ ३॥

हे राघव! बन्धु-बान्धवोंसहित मैं अपने- आपको आज गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ, क्योंकि रघुकुलभूषण राम मेरे अग्निसाक्षिक मित्र बने हैं।

अहमप्यनुरूपस्ते वयस्यो ज्ञास्यसे शनैः।
न तु वक्तुं समर्थोऽहं स्वयमात्मगतान् गुणान्॥ ४॥

मैं भी आपका योग्य मित्र हूँ। यह बात आपको धीरे-धीरे ज्ञात हो जायेगी। मैं अपने मुख से अपने गुणों का वर्णन आपके सामने नहीं कर सकता।

महात्मनां तु भूयिष्ठं त्वद्विधानां कृतात्मनाम्।
निश्चला भवति प्रीतिर्धैर्यमात्मवतामिव॥ ५॥

आप जैसे आत्मज्ञानी, धैर्यवान्, सफलमनोरथ, महात्माओं की प्रीति अवश्य ही अटल एवं निश्चय होती है।

रजतं वा सुवर्णं वा वस्त्राण्याभरणानि च।
अविभक्तानि साधूनामवगच्छन्ति साधवः॥ ६॥

सज्जन पुरुष=सन्मित्र अपने मित्र के स्वर्ण, रजत और उत्तम वस्त्र-आभूषणों को अपना ही समझते हैं, परस्पर कोई भेद-भाव नहीं रखते। महापुरुष ऐसा ही समझते हैं।

आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखित सुखितोऽपि वा।
निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यः परमा गतिः॥ ७॥

मित्र चाहे धनी हो या निर्धन, दुःखी हो चाहे सुखी, निर्दोष हो चाहे सदोष—कैसी भी स्थिति में हो फिर भी मित्र उसका परम सहायक हुआ करता है।

धनत्यागः सुखत्यागो देहत्यागोऽपि वा पुनः।
वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम्॥ ८॥

इसी कारण मित्र-स्नेह के मूल्य में मित्र लोग अपने मित्र के लिए धन, सुख और यहाँ तक कि प्राणों को भी त्याग देते हैं।

तत्तथेत्यब्रवीद्रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम्।
लक्ष्मणस्याग्रतो लक्ष्म्या वासवस्येव धीमतः॥ ९॥

सुग्रीव की यह बात सुनकर इन्द्र की कमनीय कान्ति को अतिक्रान्त करनेवाले लक्ष्मण के समक्ष प्रियवादी सुग्रीव से श्रीराम ने कहा—हे सुग्रीव! आपने जो कुछ कहा है वह सर्वथा उचित है।

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।
उवाच प्रणयाद्रामं हर्षव्याकुलिताक्षरम्॥ १०॥

हर्षातिरेक के कारण सुग्रीव के मुख से शब्द नहीं निकल रहे थे, फिर भी राम की बात सुनकर सुग्रीव प्रसन्न हो स्नेहसिक्त और मधुरवाणी से प्रेमपूर्वक राम से बोले—

अहं विनिकृतो भ्रात्रा चराम्येष भयार्दितः।
ऋष्यमूकं गिरिवरं हृतभार्यः सुदुःखितः॥ ११॥

अपने भाई बाली द्वारा अपमानित और निष्कासित होकर स्त्री से वियुक्त, अत्यन्त दुःखित और आतङ्कित अवस्था में मैं इस ऋष्यमूक पर्वत पर मारा-मारा फिरते हुए अपना जीवन यापन कर रहा हूँ।

बालिनो मे भयार्तस्य सर्वलोकाभयङ्कर।
ममापि त्वमनाथस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि॥ १२॥

हे समस्त लोकों को अभय प्रदान करनेवाले राम! बाली के भय से आतङ्कित मुझ अनाथ के ऊपर आप कृपा कीजिए।

एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः।
प्रत्युवाच स काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव॥ १३॥

जब सुग्रीव ने इस प्रकार कहा तब धर्मज्ञ, धर्मवत्सल, तेजस्वी श्रीराम मुस्कराते हुए सुग्रीव से बोले—

उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम्।
अद्यैव तं हनिष्यामि तव भार्यापहारिणम्॥ १४॥

उपकार करना मित्र का लक्षण है और अपकार करना शत्रु का लक्षण है, अतः मैं एक सच्चे मित्र के नाते आपकी भार्या का अपहरण करनेवाले उस बाली को आज ही मार डालूँगा।

राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः।
विनिःश्वस्य च तेजस्वी राघवं पुनरब्रवीत्॥ १५॥

वाहिनीपति तेजस्वी सुग्रीव श्रीराम के ऐसे वचन सुनकर एक दीर्घ निःश्वास लेकर पुनः श्रीराम से बोले—

पुराहं बालिना राम राज्यात्स्वादवरोपितः।
परुषाणि च संश्राव्य निर्धतोऽस्मि बलीयसा॥ १६॥
हृता भार्या च मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
सुहृदश्च मदीया ये संयता बन्धनेषु ते॥ १७॥

हे राम! पहले तो उस बलवान् बाली ने मुझे राज्यसिंहासन से उतार दिया, फिर मुझे कठोर वचन कह धिक्कार और फटकार कर मेरा अपमान कर मुझे राज्य से बाहर निकाल दिया। उसने मेरी प्राण-प्रिया भार्या को छीन लिया और जो मेरे हितैषी बन्धु-



बान्धव थे उन सबको पकड़कर बन्दी बना लिया।

श्रुत्वैतद्वचनं रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत्।
किं निमित्तमभूद्वैरं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ १८॥

सुग्रीव के इन वचनों को सुनकर राम ने कहा—हे सुग्रीव! बाली के साथ तुम्हारी शत्रुता किस कारण हुई? मैं वह सब वृत्तान्त यथातथ्य जानना चाहता हूँ।

ततः प्रहृष्टवदनः सुग्रीवो लक्ष्मणाग्रजे।
वैरस्य कारणं तत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ १९॥

तब सुग्रीव ने प्रसन्नतापूर्वक श्रीराम से बाली के साथ वैर होने के मूल कारणों को यथातथ्य कहना आरम्भ किया।

श्रूयतां राम यद्वृत्तमादितः प्रभृति त्वया।
यथा वैरं समुद्भूतं यथा चाहं निराकृतः॥ २०॥

हे राम! जिस प्रकार बाली से मेरा वैर हुआ और जिस प्रकार मैं राज्य से निर्वासित किया गया—वह सब वृत्तान्त मैं आदि से कहता हूँ आप ध्यानपूर्वक सुनें।

बाली नाम मम भ्राता ज्येष्ठः शत्रुनिषूदनः।
पितुर्बहुमतो नित्यं ममापि च तथा पुरा॥ २१॥

शत्रुनाशक बाली नाम का मेरा ज्येष्ठ भ्राता है, जिसका पिताजी बहुत सम्मान करते थे और वैर होने से पूर्व मैं भी उनका बहुत आदर करता था।

पितर्युपरतेऽस्माकं ज्येष्ठोऽयमिति मन्त्रिभिः।
कपीनामीश्वरो राज्ये कृतः परमसम्मतः॥ २२॥

कुछ समय के पश्चात् पिताजी के स्वर्गवासी होने पर बाली को ज्येष्ठ होने के कारण मन्त्रियों ने सर्वसम्मति से राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त किया।

राज्यं प्रशासतस्तस्य पितृपैतामहं महत्।
अहं सर्वेषु कालेषु प्रणतः प्रेष्यवत्स्थितः॥ २३॥

बाली पिता-पितामहों के विशाल राज्य का शासन करने लगा और मैं उनके पास दास की भाँति विनीत भाव से रहने लगा।

मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुन्दुभेः सुतः।
तेन तस्य महद्वैरं स्त्रीकृतं विश्रुतं पुरा॥ २४॥

कुछ समय के पश्चात् दुन्दुभि नामक असुर के अत्यन्त तेजस्वी एवं ज्येष्ठ पुत्र के साथ किसी स्त्री के कारण बाली की महान् शत्रुता हो गई।

स तु सुप्तजने रात्रौ किष्किन्धाद्वारमागतः।
नर्दति स्म सुसंरब्धो वालिनं चाह्वयद्रणे॥ २५॥

एक बार रात्रि में जबकि सब लोग सो रहे थे वह दानव किष्किन्धा नगरी के मुख्य द्वार पर आया और गर्जन-तर्जनपूर्वक बाली को संग्राम के लिए ललकारा।

प्रसुप्तस्तु मम भ्राता नर्दतो भैरवस्वनम्।
श्रुत्वा न ममृषे बाली निष्पपात जवात्तदा॥ २६॥

घोर निद्रा में लीन मेरा भाई बाली गर्जते हुए उस मायावी की भैरव ललकार को सहन न कर सका और शीघ्रतापूर्वक महल से बाहर निकल आया।

स तु वै निःसृतः क्रोधात्तं हन्तुमसुरोत्तमम्।
वार्यमाणस्ततः स्त्रीभिर्मया च प्रणतात्मना॥ २७॥
स तु निर्धूय सर्वान्नो निर्जगाम महाबलः।
ततोऽहमपि सौहार्दान्निःसृतो वालिना सह॥ २८॥

उस असुर को मारने के लिए बाली को महल से बाहर निकलते देखकर राजमहल की स्त्रियों ने उसे रोका और विनयपूर्वक मैंने भी रोका, परन्तु महाबली बाली उन स्त्रियों को धक्का देकर बाहर निकल गया। तब मैं भी भ्रातृ-स्नेह के कारण बाली के पीछे हो लिया।

स तु मे भ्रातरं दृष्ट्वा मां च दूरादवस्थितम्।
असुरो जातसन्त्रासः प्रदुद्राव ततो भृशम्॥ २९॥

वह मायावी असुर मेरे भाई को आते देखकर तथा दूर से मुझे भी देखकर भयभीत होकर बड़े वेग से भाग खड़ा हुआ।

तस्मिन् द्रवति संत्रस्ते ह्यावां द्रुततरं गतौ।
प्रकाशश्च कृतो मार्गश्चन्द्रेणोद्गच्छता तदा॥ ३०॥

जब वह भयभीत होकर भागा तब हम दोनों भाई भी तेजी से उसके पीछे दौड़ पड़े। उस समय उदय होते हुए चन्द्रमा ने प्रकाश के द्वारा मार्ग में हमारी सहायता की।



स तृणैरावृतं दुर्गं धरण्या विवरं महत्।
प्रविवेशासुरो वेगादावामासाद्य विष्ठितौ॥ ३१॥

इतने में वह असुर घास-फूँस से ढके, पृथिवी के एक दुर्गम विवर—भूलभूलैयाँ में वेगपूर्वक प्रविष्ट हो गया। हम दोनों भाई उस भूलभुलैयाँ के द्वार पर पहुँचकर रुक गये।

तं प्रविष्टं रिपुं दृष्ट्वा बिलं रोषवशं गतः।
मामुवाच तदा बाली वचनं क्षुभितेन्द्रियः॥ ३२॥

शत्रु को उस भूलभुलैयाँ में प्रविष्ट हुआ देख बाली बहुत क्रुद्ध हुआ, फिर क्रोध से चलायमान इन्द्रियोंवाले बाली ने मुझसे कहा—

इह त्वं तिष्ठ सुग्रीव बिलद्वारि समाहितः।
यावदत्र प्रविश्याहं निहन्मि सहसा रिपुम्॥ ३३॥

हे सुग्रीव! तुम सावधान होकर तब तक इस बिल=भूलभुलैयाँ के द्वार पर ठहरो जब तक मैं इस गुफा में प्रवेश कर और संग्राम में उस शत्रु को मारकर लौट न आऊँ।

मया त्वेतद्वचः श्रुत्वा याचितः स परन्तपः।
शापयित्वा च मां पद्भ्यां प्रविवेश बिलं महत्॥ ३४॥

बाली का यह ओदश सुन मैंने उसके साथ उस बिल में जाने की प्रार्थना की, परन्तु मुझे अपने चरणों की शपथ देकर वह अकेला ही उस गुफा में प्रविष्ट हुआ।

तस्य प्रविष्टस्य बिलं साग्रः संवत्सरो[१] गतः।
स्थितस्य च मम द्वारि स कालोऽप्यत्यवर्तत॥ ३५॥

बाली को उस बिल में प्रविष्ट हुए और मुझे द्वार पर खड़े हुए पूरा एक दिन बीत गया।

अहं तु नष्टं तं ज्ञात्वा स्नेहादागतसम्भ्रमः।
भ्रातरं तु न पश्यामि पापाशङ्कि च मे मनः॥ ३६॥

तब मैं यह समझकर कि बाली मारा गया, स्नेह के कारण अत्यन्त विकल हो गया। इतने दीर्घ समय तक भाई को न देखकर मेरे मन में नाना प्रकार की अनिष्ट शंकाएँ होने लगीं।

अथ दीर्घस्य कालस्य बिलात्तस्माद्विनिः सृतम्।
सफेनं रुधिरं रक्तमहं दृष्ट्वा सुदुःखितः॥ ३७॥

अनिष्ट शंकाओं के होने पर भी मैं वहाँ खड़ा ही रहा, तब दीर्घकाल के पश्चात् उस बिल से फेनसहित रक्त की धार बहती देखकर मैं अत्यन्त दुःखी हुआ।

नर्दतामसुराणां च ध्वनिर्मे श्रोत्रमागतः।
न रतस्य च संग्रामे क्रोशतो निःस्वनो गुरोः॥ ३८॥

इतने में मुझे युद्ध में निरत और गर्जते हुए असुरों का घोर शब्द सुनाई पड़ा, परन्तु संग्राम में जुटकर ललकारते हुए बड़े भाई का शब्द मुझे सुनाई नहीं दिया।

अहं त्ववगतो बुद्ध्या चिह्नैस्तैर्भ्रातरं हतम्।
पिधाय च बिलद्वारं शिलया गिरिमात्रया॥ ३९॥

रक्तादि चिह्नों को देखकर मैंने बुद्धिपूर्वक यह निश्चय किया कि भाई बाली मारा गया। भाई को मारकर यह कहीं मुझे भी न मार दे ऐसा सोचकर मैंने एक बहुत बड़ी पाषाणशिला से उस बिल के द्वार को बन्द कर दिया।

शोकार्तश्चोदकं कृत्वा किष्किन्धामागतः सखे।
गूहमानस्य मे तत्त्वं यत्नतो मन्त्रिभिः श्रुतम्॥ ४०॥

हे मित्र राम! शोकार्त मन से मरणानन्तर होनेवाले स्नानादि से निवृत्त होकर मैं किष्किन्धा लौट आया। यद्यपि मैंने बाली के मरने की बात को यत्नपूर्वक छिपाया तथापि जनश्रुति के द्वारा मन्त्रियों ने इसे जान लिया।

ततोऽहं तैः समागम्य सम्मतैरभिषेचितः।
राज्यं प्रशासतस्तस्य न्यायतो मम राघव॥ ४१॥

हे राम! तब उन सभी मन्त्रियों ने परस्पर विचार-विमर्श के पश्चात् मेरा राज्याभिषेक कर दिया। अभिषिक्त होने पर मैं न्यायपूर्वक राज्य करने लगा।

आजगाम रिपुं हत्वा दानवं स तु वानरः।
अभिषिक्तं तु मां दृष्ट्वा संरक्तलोचनः॥ ४२॥

इसी मध्य में उस मायावी दानव को मारकर

१. संवत्सरशब्दो घस्रपर्यायः—संवत्सर शब्द दिन का पर्यायवाची भी होता है।



बाली किष्किन्धा को लौट आया। मुझे राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त देखकर उसके नेत्र लाल हो गये।

ततः क्रोधसमाविष्टं संरब्धं तमुपागतम्।
अहं प्रसादयाञ्चक्रे भ्रातरं हितकाम्यया॥ ४३॥

क्रोध के कारण अत्यन्त क्षुब्ध, उस आये हुए बाली को उसकी हितकामना की दृष्टि से मैंने प्रसन्न करने का प्रयत्न किया।

दिष्ट्यासि कुशली प्राप्तो दिष्ट्यापि निहतो रिपुः।
अनाथस्य हि मे नाथस्त्वमेकोऽनाथनन्दनः॥ ४४॥

मैंने कहा—यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आप उस शत्रु को मारकर कुशलपूर्वक लौट आये हैं। आप अनाथों के आनन्दवर्धक हैं और मुझ अनाथ के एकमात्र आप ही नाथ हैं।

इदं बहुशलाकं ते पूर्णचन्द्रमिवोदितम्।
छत्रं सबालव्यजनं प्रतीच्छस्व मयोद्यतम्॥ ४५॥

अब आप अपना अनेक कमानियोंवाला और नवोदित चन्द्रमा के समान श्वेत छत्र और चँवर, जिसे मैंने आपकी अनुपस्थिति में धारण किया था—स्वीकार कीजिए।

राजभावनियोगोऽयं मया त्वद्विरहात्कृतः।
सामात्यपौरनगरं स्थितं निहतकण्टकम्॥ ४६॥
न्यासभूतमिदं राज्यं तव निर्यातयाम्यहम्।
मा च रोषं कृथाः सौम्य मयि शत्रुनिबर्हण॥ ४७॥

आपके अभाव में ही मन्त्रिमण्डल ने मुझे इस पद पर अभिषिक्त किया था। अब मन्त्रियों एवं पुरवासियोंसहित आपके निष्कण्टक राज्य को जो मेरे पास धरोहर के रूप में था, मैं आपको वापस लौटा रहा हूँ। हे शत्रुसूदन! आप मेरे ऊपर क्रुद्ध न हों।

स्निग्धमेवं ब्रुवाणं मां स तु निर्भर्त्स्य वानरः।
धिक्त्वामिति च मामुक्त्वा बहु तत्तदुवाच ह॥ ४८॥

हे राम! स्नेहपूर्वक ऐसा कहने पर भी उस वानर ने मुझे फटकारते हुए कहा—''तुझे धिक्कार है।'' यह कहकर और भी बहुत कुछ ऐसा-वैसा कहा।

तदा निर्वासयामास वस्त्रेणैकेन वानरः।
तेनाहमपविद्धश्च हृतदारश्च राघव॥ ४९॥

हे राघव! धिक्कारने और फटकारने के पश्चात् उस वानर ने मुझे एक वस्त्र पहनाकर राज्ये से बाहर निकाल दिया। मैं उस बाली का सताया हुआ हूँ। उसने मेरी पत्नी भी छीन ली है।

ऋष्यमूकं गिरिवरं भार्याहरणदुःखितः।
प्रविष्टोऽस्मि दुराधर्षं बालिनः कारणान्तरे॥ ५०॥

अपनी भार्या के छिन जाने के दुःख से दुःखी होकर मैंने पर्वतश्रेष्ठ ऋष्यमूक पर आश्रय लिया है। एक कारण विशेष से यह पर्वत बाली के आक्रमण से सुरक्षित है।

एतत्ते सर्वमाख्यातं वैरानुकथनं महत्।
अनागसा मया प्राप्तं व्यसनं पश्य राघव॥ ५१॥

बाली के साथ वैर होने का सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने आपको सुना दिया। हे राघव! आप देखिए निरपराध होने पर भी मैं महादुःख भोग रहा हूँ।

बालिनस्तु भयार्तस्य सर्वलोकाभयङ्कर।
कर्तुमर्हसि मे वीर प्रसादं तस्य निग्रहात्॥ ५२॥

सब लोकों को अभयप्रदान करनेवाले राम! आप बाली को दण्ड देकर इस महान् भय से मेरी रक्षा कीजिए और कृपा कर मुझे उसके अत्याचारों से बचाइए।

एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मसंहितम्।
वचनं वक्तुमारेभे सुग्रीवं प्रहसन्निव॥ ५३॥

सुग्रीव के ऐसा निवेदन करने पर महातेजस्वी धर्मात्मा श्रीराम मुस्कराकर सुग्रीव से यह धर्म-युक्त वचन बोले—

अमोघाः सूर्यसङ्काशा ममैते निशिताः शराः।
तस्मिन्बालिनि दुर्वृत्ते निपतिष्यन्ति वेगिताः॥ ५४॥

हे सुग्रीव! सूर्य के समान देदीप्यमान मेरे तीखे ओर अमोघ=कभी निष्फल न जानेवाले—ये बाण उस दुराचारी बाली के ऊपर बड़ी तेजी से जाकर गिरेंगे।



यावत्तं नाभिपश्यामि तव भार्यापहारिणम्।
तावत्स जीवेत्पापात्मा बाली चारित्रदूषकः॥ ५५॥

तुम्हारी भार्या का अपहरण करनेवाले बाली को जब तक मैं देख नहीं लेता तभी तक तुम उस चरित्रहीन पापी को जीवित समझो।

आत्मानामनुपश्यामि मग्नं त्वां शोकसागरे।
त्वामहं तारयिष्यामि कामं प्राप्स्यसि पुष्कलम्॥ ५६॥

मैं आपको भी अपने समान शोकसागर में डूबा हुआ देख रहा हूँ। मैं इस विपत्ति से तुम्हारा उद्धार करूँगा। तुम अपनी प्राणप्रिया पत्नी और राज्यलक्ष्मी दोनों को प्राप्त करोगे।

अष्टमः सर्गः (८)

बाली के पौरुष का वर्णन—

रामस्य वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम्।
सुग्रीवः पूजयांचक्रे राघवं प्रशशंस च॥ १॥

हर्ष और पुरुषार्थ को बढ़ानेवाले श्रीराम के इन वचनों को सुनकर सुग्रीव हाथ जोड़कर उनकी प्रशंसा करते हुए बोले—

असंशयं प्रज्वलितैस्तीक्ष्णैर्मर्मातिगैः शरैः।
त्वं दहेः कुपितो लोकान् युगान्त इव भास्करः॥ २॥

हे राम! आप क्रुद्ध होने पर अपने जाज्वल्यमान, तीक्ष्ण और मर्मभेदी बाणों से इन सब लोकों को उसी प्रकार भस्म कर सकते हैं जैसे प्रलयकालीन सूर्य।

बालिनः पौरुषं यत्तद्यच्च वीर्यं धृतिश्च या।
तन्ममैकमनाः श्रुत्वा विधत्स्व यदनन्तरम्॥ ३॥

परन्तु पहले आप बाली के पौरुष, पराक्रम और धैर्य के सम्बन्ध में सावधानतापूर्वक मुझसे सुन लीजिए तत्पश्चात् आप जैसा उचित समझें वैसा करना।

बहवः सारवन्तश्च वनेषु विविधा द्रुमाः।
बालिना तरसा भग्ना बलं प्रथयताऽऽत्मनः॥ ४॥

बाली ने अपने बल की परीक्षा और परिचय देने के लिए वन के बड़े-बड़े विशाल अनेक वृक्षों को उखाड़कर फेंक दिया है।

महिषो दुन्दुभिर्नाम कैलासशिखरप्रभः।
बलं नागसहस्रस्य धारयामास वीर्यवान्[१]॥ ५॥

विषाणयोर्गृहीत्वा तं दुन्दुभिं गिरिसन्निभम्।
आविध्यत तदा बाली विनदन् कपिकुञ्जरः॥ ६॥

कैलास पर्वत के शिखर के समान ऊँचा एवं विशालकाय दुन्दुभि नाम का एक पराक्रमी भैंसा था। उसके शरीर में अनेक हाथियों का बल था (अत्यन्त बलवान् था बस इतना ही भाव है।) बाली ने पर्वताकार उस दुन्दुभि के दोनों सींग पकड़कर उसे परे धकेल दिया और घोर नाद किया।

इमे च विपुलाः सालाः सप्तशाखावलम्बिनः।
यत्रैकं घटते बाली निष्पत्रयितुमोजसा॥ ७॥

हे राम! देखिए, ये जो सामने साल के सात बड़े-बड़े वृक्ष हैं, जिनकी शाखाएँ चारों ओर फैली हुई हैं। इनमें से किसी एक वृक्ष को बाली अपने ओज और पराक्रम से हिला कर पत्तों से रहित कर सकता है।

एतदस्यासमं वीर्यं मया राम प्रकीर्तितम्।
कथं तं बालिनं हन्तुं समरे शक्ष्यसे नृप॥ ८॥

हे राम! बाली का अतुल पराक्रम मैंने आपके सामने वर्णन कर दिया। हे राजन्! आप संग्राम में उस बाली को कैसे मार सकेंगे, यह आप ही जानें।

तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं प्रहसंल्लक्ष्मणोऽब्रवीत्।
कस्मिन् कर्मणि श्रद्धया बालिनो वधम्॥ ९॥

१. रामायण इतिहास के **साथ काव्य** भी है। अलंकार काव्य की आत्मा होते हैं। इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार है।



सुग्रीव के ऐसा कहने पर लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा—हे सुग्रीव! राम कौन-सा कार्य करके दिखाएँ जिससे आपको उनके द्वारा बालिवध का विश्वास हो जाए।

तमुवाचाथ सुग्रीवः सप्त सालानिमान् पुरा।
एवमेकैकशो बाली विव्याधाथ स चासकृत्॥ १०॥

लक्ष्मण की बात सुनकर सुग्रीव ने कहा—ये सामने साल के जो वृक्ष दिखाई दे रहे हैं बाली ने इनमें से प्रत्येक को एक-एक करके अनेक बार बींधा है।

रामोऽपि दारयेदेषां बाणेनैकेन चेद् द्रुमम्।
बालिनं निहतं मन्ये दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम्॥ ११॥

यदि श्रीराम अपने बाण से इनमें से एक साल वृक्ष का भी भेदन कर दें तो राम के इस पराक्रम को देखकर मुझे बाली के वध का पूर्ण विश्वास हो जायेगा।

❮ नवमः सर्गः ❯ (९)

राम द्वारा सात सालों का वेधन तथा सुग्रीव-बाली युद्ध—

एतच्च वचनं श्रुत्वा सुग्रीवेण सुभाषितम्।
प्रत्ययार्थं महातेजा रामो जग्राह कार्मुकम्॥ १॥

सुग्रीव के मनोहारी वचनों को सुन महातेजस्वी राम ने उसे विश्वास दिलाने के लिए अपने धनुष को उठाया।

स गृहीत्वा धनुर्घोरं शरमेकं च मानदः।
सालमुद्दिश्य चिक्षेप ज्यास्वनैः पूरयन् दिशः॥ २॥

मानप्रद श्रीराम ने अपने विशाल धनुष पर एक बाण का संधान किया और फिर प्रत्यञ्चा=डोरी के शब्द से सम्पूर्ण दिशाओं को गुञ्जायमान करते हुए उस साल वृक्ष को लक्ष्य करके छोड़ दिया।

स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्णपरिष्कृतः।
भित्त्वा सालान् गिरिप्रस्थं सप्तभूमिं विवेश ह॥ ३॥

महाबाली राम द्वारा छोड़ा गया वह स्वर्ण-मण्डित बाण उन सातों साल के वृक्षों को काटता हुआ और पर्वत को फोड़ता हुआ भूमि में प्रविष्ट हो गया।

तान् दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान् सालान् वानरपुङ्गवः।
इदं चोवाच धर्मज्ञं कर्मणा तेन हर्षितः॥ ४॥

श्रीराम के बाण द्वारा उन सात साल वृक्षों को कटा हुआ देखकर और राम के विस्मयकारी कर्म से प्रसन्न होते हुए वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने धर्मज्ञ राम से कहा—

सेन्द्रानपि सुरान् सर्वांस्त्वं बाणैः पुरुषर्षभ।
समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्बालिनं प्रभो॥ ५॥

हे पुरुषोत्तम! हे प्रभो! आप तो इन बाणों से देवताओंसहित इन्द्र को भी मार सकते हैं, फिर बाली की तो बात ही क्या है?

येन सप्त महासाला गिरिर्भूमिश्च दारिताः।
बाणेनैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः॥ ६॥

हे राम! जिस व्यक्ति ने अपने एक ही बाण से सात साल के वृक्षों, पर्वतों और भूमि को विदीर्ण कर डाला, ऐसे आपके समक्ष युद्ध-क्षेत्र में कौन ठहर सकता है?

अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम।
सुहृदं त्वां समासाद्य महेन्द्रवरुणोपमम्॥ ७॥

आज आप जैसे वरुण और इन्द्र के समान परम मित्र को प्राप्त कर मेरे सम्पूर्ण शोक नष्ट हो गये और मेरे हर्ष का पारावार नहीं है।

तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम्।
बालिनं जहि काकुत्स्थ मया बद्धोऽयमञ्जलिः॥ ८॥

हे राम! मैं आपके आगे हाथ जोड़ता हूँ मेरी प्रसन्नता एवं शान्ति के लिए शत्रुरूपी मेरे भाई बाली को आज ही मारिए।



ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम्।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुमतं वचः॥ ९॥

तब महाबुद्धिमान् राम ने प्रियदर्शी सुग्रीव का आलिंगन करते हुए लक्ष्मण द्वारा अनुमोदित ये वचन कहे—

अस्माद् गच्छेम किष्किन्धां क्षिप्रं गच्छ त्वमग्रतः।
गत्वा चाह्वय सुग्रीव बालिनं भ्रातृगन्धिनम्॥ १०॥

हे सुग्रीव! यहाँ से हम लोग शीघ्र ही किष्किन्धा को चलते हैं। तुम आगे-आगे जाओ और वहाँ जाकर अपने भ्रातृहिंसक भाई को युद्ध के लिए ललकारो।

सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां बालिनः पुरीम्।
वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन् गहने वने॥ ११॥

यह कहकर वे सभी बाली की नगरी किष्किन्धा में जाकर पास के गहन वन में वृक्षों में छिपकर बैठ गये।

सुग्रीवो व्यनदद् घोरं बालिनो ह्वानकारणात्।
गाढं परिहितो वेगान्नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम्॥ १२॥

सुग्रीव ने लंगर-लंगोटे कसकर बाली को बुलाने के लिए घोर गर्जन आरम्भ कर दिया मानो अपनी उस ध्वनि से वे आकाश को विदीर्ण कर डालेंगे।

तं श्रुत्वा निनदं भ्रातुः क्रुद्धो बाली महाबलः।
निष्पपात सुसंरब्धो भास्करोऽस्ततटादिव॥ १३॥

अपने भाई सुग्रीव के उस घोर गर्जन को सुनकर क्रुद्ध हुआ बाली रोष में भरकर इस प्रकार निकल पड़ा जैसे सूर्य अस्ताचल से निकलकर आया हो।

ततस्तु तुमुलं युद्धं बालिसुग्रीवयोरभूत्।
गगने ग्रहयोर्घोरं बुधाङ्गारकयोरिव॥ १४॥

तत्पश्चात् बाली और सुग्रीव का ऐसा तुमुल युद्ध हुआ जैसे आकाश में मंगल और बुध का होता है।

तलैरशनिकल्पैश्च वज्रकल्पैश्च मुष्टिभिः।
जघ्नतुः समरेऽन्योन्यं भ्रातरौ क्रोधमूर्छितौ॥ १५॥

बाली और सुग्रीव विद्युत् के समान पाद-प्रहारों और वज्र के तुल्य मुक्कों से, क्रोध में भरकर एक-दूसरे को मारने लगे।

ततो रामो धनुष्पाणिस्तावुभौ समुदीक्ष्य तु।
अन्योन्यसदृशौ वीरावुभौ देवाविवाश्विनौ॥ १६॥

हाथ में धनुष-बाण लिये हुए राम ने उन दोनों भाइयों को ध्यान से देखा, तब वे दोनों अश्विनीकुमारों के सदृश समान आकृति वाले दिखाई दिये।

यन्नावगच्छत्सुग्रीवं बालिनं वापि राघवः।
ततो न कृतवान् बुद्धिं मोक्तुमन्तकरं शरम्॥ १७॥

जब राम यह न जान सके कि इनमें कौन सुग्रीव है और कौन बाली तब ऐसी अवस्था में उन्होंने अपना प्राणघातक बाण नहीं छोड़ा।

एतस्मिन्नन्तरे भग्नः सुग्रीवस्तेन बालिनः।
अपश्यन् राघवं नाथमृष्यमूकं प्रदुद्रुवे॥ १८॥

इसी बीच सुग्रीव बाली के प्रहार से आहत हो और श्रीराम को अपनी सहायता के लिए उद्यत न देख ऋष्यमूक पर्वत की ओर भाग गया।

राघवोऽपि सह भ्रात्रा सह चैव हनुमता।
तदेव वनमागच्छत्सुग्रीवो यत्र वानरः॥ १९॥

श्रीराम भी लक्ष्मण और हनुमान् के साथ उसी वन में लौट आये जहाँ सुग्रीव निवास करता था।

तं समीक्ष्यागतं रामं सुग्रीवः सहलक्ष्मणम्।
ह्रीमान् दीनमुवाचेदं वसुधामवलोकयन्॥ २०॥

सुग्रीव ने लक्ष्मणसहित राम को आते हुए देखकर, लज्जा के मारे सिर झुका, भूमि की ओर देखते हुए दीनतापूर्वक कहा—

आह्वयस्वेति मामुक्त्वा दर्शयित्वा च विक्रमम्।
वैरिणा घातयित्वा च किमिदानीं त्वया कृतम्॥ २१॥

हे राम! आपने अपने पराक्रम दिखा मुझसे कहा कि बाली को ललकारो और फिर शत्रु से मेरी खूब दुर्गति कराई। आपने यह क्या किया?

तामेव वेलां वक्तव्यं त्वया राघव तत्त्वतः।
बालिनं न निहन्मीति ततो नाहमितो व्रजे॥ २२॥

हे राघव! यदि आप उसी समय स्पष्टरूप से कह देते कि मैं बाली को नहीं मारूँगा तो में यहाँ से जाता ही नहीं।



तस्य चैवं ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
करुणं दीनया वाचा राघवः पुनरब्रवीत्॥ २३॥

करुणापूर्वक दीन वाणी से महात्मा सुग्रीव के ऐसा कहने पर राम बोले—

सुग्रीव श्रूयतां तात क्रोधश्च व्यपनीयताम्।
कारणं येन बाणोऽयं न मया स विसर्जितः॥ २४॥

हे तात सुग्रीव! क्रोध को दूर करो और मेरी उस बात को सुनो जिसके कारण मैंने तीर नहीं चलाया।

अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च।
त्वं च सुग्रीव बाली च सदृशौ स्थः परस्परम्॥ २५॥

हे सुग्रीव! अलंकार, वेश, डील-डौल और चाल-ढाल में तुम और बाली समान ही हो।

स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानरः।
विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये॥ २६॥

यहाँ तक कि तुम दोनों का कण्ठस्वर, कान्ति, दृष्टि, विक्रम और शब्द-ध्वनि इन सबमें कोई विशेषता=भेद नहीं दीख पड़ता।

ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम।
नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम्॥ २७॥

हे वानरोत्तम! तुम्हारे रूप सादृश्य के कारण मैं धोखे में पड़ गया और मैंने अपना शत्रु-संहारी बाण नहीं छोड़ा।

त्वयि वीर विपन्ने हि अज्ञानाल्लाघवान्मया।
मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यापितं स्यात्कपीश्वर॥ २८॥

हे कपीश्वर! यदि मेरी अज्ञानता अथवा जल्दबाजी के कारण तुम मारे जाते तो मेरी मूर्खता और लड़कपन का सर्वत्र ढिंढोरा पिट जाता।

वीर युध्यस्व भूयस्त्वं पश्य बालिनमाहवे।
निरस्तमिषुणैकेन वेष्टमानं महीतले॥ २९॥

हे वीर! तुम एक बार पुनः बाली से युद्ध करो। इस बार तुम संग्राम में बाली को मेरे एक ही तीर से पृथिवी पर छटपटाता हुआ देखोगे।

अभिज्ञानं कुरुष्व त्वमात्मनो वानरेश्वर।
येन त्वामभिजानीयां द्वन्द्वयुद्धमुपागतम्॥ ३०॥

हे वानरराज! तुम अपनी पहचान के लिए कोई चिह्न धारण कर लो जिससे द्वन्द्व युद्ध करते समय मैं तुम्हें पहचान सकूँ।

गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम्।
कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥ ३१॥

तत्पश्चात् राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया—हे लक्ष्मण! तुम इस पुष्पित और शुभ लक्षण गजपुष्पी लता को उखाड़कर महात्मा सुग्रीव के गले में पहना दो।

ततो गिरितटे जातामुत्पाट्य कुसुमाकुलाम्।
लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत्॥ ३२॥

तब पर्वत पर उगी हुई उस पुष्पित गजपुष्पी को उखाड़कर लक्ष्मण ने सुग्रीव के गले में पहना दिया।

विभ्राजमानो वपुषा रामवाक्यसमाहितः।
जगाम सह रामेण किष्किन्धां बालिपालिताम्॥ ३३॥

अपने शरीर को माला द्वारा सुशोभित कर और श्रीराम के वचनों से आश्वस्त होकर सुग्रीव पुनः श्रीराम के साथ बाली की राजधानी किष्किन्धा को गये।

➤ दशमः सर्गः ➤ (१०)

सुग्रीव का बाली को युद्ध के लिए ललकारना और तारा का बाली को युद्ध से रोकना—

रामेण सह प्राप्य तं किष्किन्धां बालिपालिताम्।
ततः स निनदं घोरं कृत्वा युद्धाय चाह्वयत्॥ १॥

श्रीराम के साथ बाली द्वारा पालित एवं रक्षित किष्किन्धा नगरी में पहुँचकर सुग्रीव ने भयंकर गर्जना करते हुए बाली को युद्ध के लिए ललकारा।



अथ तस्य निनादं तु सुग्रीवस्य महात्मनः।
शुश्रावान्तःपुरगतो बाली भ्रातुरमर्षणः॥ २॥

अन्तःपुर में स्त्रियों के मध्य में बैठे हुए भाई को न सहनेवाले बाली ने सुग्रीव के उस घोर गर्जना को सुना।

शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः।
वेगेन चरणन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम्॥ ३॥

सुग्रीव के असहनीय सिंहनाद को सुनकर बाली पृथिवी को कम्पायमान करता हुआ बड़ी तीव्र गति से राजमहल से बाहर निकला।

तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहाद्दर्शितसौहृदा।
उवाच त्रस्तसम्भ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः॥ ४॥

बाली को राजमहल से निकलते देखकर तारा भयभीत हो और प्रेमसहित बाली का आलिङ्गन कर उससे ये हितकारी वचन बोली—

साधु क्रोधमिमं वीर नदीवेगमिवागतम्।
शयनादुत्थितः काल्यं त्यज भुक्तामिव स्त्रजम्॥ ५॥

हे वीर! नदी के वेग की भाँति उमड़े हुए इस क्रोध को तुम उसी प्रकार त्याग दो जैसे शय्या से सोकर उठने के पश्चात् मनुष्य रात्रि की पहनी हुई म्लान माला को त्याग देते हैं।

काल्यमेतेन संग्रामं करिष्यसि हरीश्वर।
वीर ते शत्रुबाहुल्यं फाल्गुता वा न विद्यते॥ ६॥
सहसा तव निष्क्रामो मम तावन्न रोचते।
श्रूयतां चाभिधास्यामि यन्निमित्तं निवार्यसे॥ ७॥

हे कपीश्वर! आप कल जाकर सुग्रीव से संग्राम करना। हे वीर! यद्यपि आपका शत्रु न तो बल में आपसे अधिक है और न आप उससे किसी बात में कम हैं तथापि इस समय मुझे आपका सहसा घर से निकलना पसन्द नहीं। मैं आपको किसलिए रोक रही हूँ वह कारण भी सुनिए—

पूर्वं त्वया निरस्तस्य पीडितस्य विशेषतः।
इहैत्य पुनराह्वानं शङ्कां जनयतीव मे॥ ८॥

अभी-अभी आप द्वारा पीटे जाने और भगाये जाने पर भी वह तुम्हें ललकार रहा है, इससे मेरा मन शंकित हो रहा है।

दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः।
निनादस्य च संरम्भो नैतदल्पं हि कारणम्॥ ९॥

इस समय उसका अहंकार, व्यवहार और गर्जन का जो ढंग है उससे प्रतीत होता है इन लक्षणों का कोई महान् कारण है।

नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम्।
अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति॥ १०॥

मेरा विचार है कि दूसरों की सहायता प्राप्त किये बिना सुग्रीव यहाँ आ नहीं सकता। उसे निश्चय ही कोई सहायक प्राप्त हुआ है जिसके बल-बूते पर वह इतना गर्ज रहा है।

पूर्वमेव मया वीर श्रुतं कथयतो वचः।
अङ्गदस्य कुमारस्य वक्ष्यामि त्वा हितं वचः॥ ११॥

हे वीर! राजकुमार अङ्गद के मुख से मैं जो बातें पहले ही सुन चुकी हूँ, आपके कल्याण के लिएं उन हितकारी बातों को मैं आपसे कहती हूँ।

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं वनान्तमुपनिर्गतः।
प्रवृत्तिस्तेन कथिता चारैराप्तैर्निवेदिता॥ १२॥

राजकुमार अङ्गद घूमते हुए वन में गया था। वहाँ इसे विश्वस्त गुप्तचरों द्वारा ज्ञात हुआ कि—

अयोध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ।
इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रथितौ रामलक्ष्मणौ॥ १३॥

इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न, युद्ध में अजेय, अयोध्याधिपति दशरथ के राम और लक्ष्मण नाम से प्रसिद्ध दो पुत्र यहाँ आये हैं।

सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ।
तव भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्कशः॥ १४॥

सुग्रीव की अभीष्ट-सिद्धि के लिए वे दोनों दुर्घष वीर कटिबद्ध हुए हैं। रण-कुशल वे दोनों भाई तुम्हारे भाई सुग्रीव के सहायक बने हैं।

रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः।
निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः॥ १५॥



उन दोनों में राम शत्रुओं का मर्दन करने में उठी हुई प्रलयाग्नि के समान हैं। वे साधु पुरुषों के लिए वृक्ष के समान आश्रय-दाता और दीन-दुःखियों के एकमात्र सहारे हैं।

आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम्।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः॥ १६॥
धातूनामिव शैलेन्द्रो गुणानामाकरो महान्।
तत्क्षमो न विरोधस्ते सह तेन महात्मा॥ १७॥

वे आर्तों के अवलम्बन, यश के पात्र, लौकिक ज्ञान और शास्त्र ज्ञान से सम्पन्न और पिता की आज्ञा का पालन करनेवाले हैं। पर्वतराज हिमालय जैसे धातुओं का आकर है वैसे ही वे भी गुणों की महाखान हैं। उन महात्मा श्रीराम से विरोध करना तुम्हें उचित नहीं।[1]

श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद्धितम्।
यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय॥ १८॥

मैं आपके हित की जो बात कह रही हूँ उसे सुनो और तदनुसार कार्य करो। आप शीघ्र ही सुग्रीव को युवराज-पद पर अभिषिक्त कर दो।

विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन्यवीयसा।
अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम्॥ १९॥

हे वीर! अपने छोटे भाई सुग्रीव के साथ वैर-विरोध मत करो। मैं तो यह भी चाहती हूँ कि आपकी श्रीराम के साथ मैत्री हो जाए।

सुग्रीवेण च सम्प्रीतिं वैरमुत्सृज्य दूरतः।
लालनीयो हि ते भ्राता यवीयानेष वानरः॥ २०॥

वैरभाव को छोड़कर तुम सुग्रीव के साथ भी मेल कर लो, क्योंकि वह आपका छोटा भाई है और उसका लालन-पोषण आपको करना ही चाहिए।

तत्र वा सन्निहस्थो वा सर्वथा बन्धुरेव ते।
न हि तेन समं बन्धुं भुवि पश्यामि कञ्चन॥ २१॥

चाहे वह आपसे दूर रहे अथवा आपके समीप वह है तो आपका भाई ही। मुझे तो सारे संसार में उस जैसा दूसरा भाई दिखाई नहीं देता।

दानमानादिसत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम्।
वैरमेतत्समुत्सृज्य तव पार्श्वे स तिष्ठतु॥ २२॥

आप दान, मान और प्रेम आदि के द्वारा उसे अपना लो जिससे वह वैर-बुद्धि को छोड़कर आपके पास ही रहने लगे।

यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि चावैषि मां हि ताम्।
याच्यमानः प्रयत्नेन साधु वाक्यं कुरुष्व मे॥ २३॥

यदि आप मेरा कोई प्रियकर्म करना चाहते हैं और मुझे अपनी हितैषिणी समझते हैं तो मैं करबद्ध जो प्रार्थना कर रही हूँ इस प्रिय और हितकर प्रार्थना को स्वीकर कर तदनुसार यत्नपूर्वक कार्य कीजिए।

➤ एकादशः सर्गः ➤ (११)

बाली का वध—

तामेवं ब्रुवन्तीं तारां ताराधिपनिभाननाम्।
बाली निर्भर्त्सयामास वचनं चेदमब्रवीत्॥ १॥

जब चन्द्रमुखी तारा ने इस प्रकार की बातें कहीं तब बाली तारा की भर्त्सना करते हुए इस प्रकार बोला—

गर्जतोऽस्य च संरम्भं भ्रातुः शत्रोर्विशेषतः।
मर्षयिष्याम्यहं केन कारणेन वरानने॥ २॥

हे शोभने! गर्वसहित गर्जना करते हुए इस भाई की जो कि मेरा शत्रु बन चुका है, ललकार को मैं कैसे सहन कर सकता हूँ?

अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम्।
धर्षणामर्षणं भीरु मरणादतिरिच्यते॥ ३॥

१. इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि बाली को राम और सुग्रीव की मैत्री का ज्ञान हो गया था, अतः श्रीराम द्वारा बाली को छिपकर मारने का आरोप मिथ्या है।



हे भीरु! देख जो शूर कभी किसी से पराजित नहीं हुए, जिन्होंने रणक्षेत्र में कभी शत्रु को पीठ नहीं दिखाई, जिन्होंने सदा शौर्य का परिचय दिया है उनके लिए इस प्रकार का तिरस्कार सहना मृत्यु से भी बढ़कर है।

न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति॥ ४॥

श्रीराम के द्वारा मेरी किसी प्रकार की हानि होगी तुम्हें ऐसी आशंका करके दुःखी नहीं होना चाहिए, क्योंकि राम धर्मज्ञ और कृतज्ञ हैं वे ऐसा पापकर्म क्यों करेंगे?

निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयोऽनुगच्छसि।
सौहृदं दर्शितं तारे मयि भक्तिः कृता त्वया॥ ५॥

तू मेरे पीछे क्यों चली आ रही है, तू स्त्रियोंसहित वापस लौट जा। हे तारे! मेरे प्रति जो तुम्हारी भक्ति थी उस सौहार्द का तुमने पर्याप्त परिचय दे दिया है।

प्रत्योत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि संभ्रमम्।
दर्पमात्रं विनेष्यामि न च प्राणैर्विमोक्ष्यते॥ ६॥

तुम विकल मत होओ। मैं सुग्रीव से युद्ध कर उसका दर्प दूर करूँगा, किन्तु उसके प्राण नहीं लूँगा।

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी।
अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता॥ ७॥

बाली के ऐसा कहने पर मन्त्रवित्[१]—मन्त्र जाननेवाली तारा ने बाली-विजय कामना से स्वस्त्ययन किया और शोक-मग्न हो अन्य स्त्रियोंसहित अन्तःपुर में लौट आई।

प्रविष्टायां तु तारायां सह स्त्रीभिः स्वमालयम्।
नगरान्निर्ययौ क्रुद्धो महासर्प इव श्वसन्॥ ८॥

स्त्रियोंसहित तारा के राजमहल में प्रविष्ट होने के पश्चात् बाली क्रुद्ध सर्प की भाँति फुंकारता हुआ किष्किन्धा से बाहर निकला।

स ददर्श ततः श्रीमान् सुग्रीवं दीप्ततेजसम्।
गाढं परिदधे वासो बाली परमरोषणः॥ ९॥

नगर से बाहर निकलने पर श्रीमान् बाली ने अग्नि के समान देदीप्यमान सुग्रीव को देखा। सुग्रीव को युद्ध के लिए प्रस्तुत देख बाली ने भी अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने लंगर-लंगोटे कस लिये।

स बाली गाढसंवीतो मुष्टिमुद्यम्य वीर्यवान्।
सुग्रीवमेवाभिमुखो ययौ योद्धुं कृतक्षणः॥ १०॥

पराक्रमी बाली कमर कस और घूंसा तानकर युद्ध की कामना से सुग्रीव की ओर चल पड़ा।

श्लिष्टमुष्टिं समुद्यम्य संरब्धतरमागतः।
सुग्रीवोऽपि तमुद्दिश्य बालिनं हेममालिनम्॥ ११॥

सुग्रीव भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर और मुक्का तानकर स्वर्णमाला-धारी बाली के समीप आया।

तौ भीमबलविक्रान्तौ सुपर्णसमवेगिनौ।
प्रवृद्धौ घोरवपुषौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे॥ १२॥

भयंकर बल-विक्रमशाली, गरुड़ के समान वेगवान् और विशालकाय बाली एवं सुग्रीव ऐसे लड़ने लगे जैसे आकाश में चन्द्र और सूर्य लड़ रहे हों।

मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनःपुनः।
तयोर्युद्धमभूद्घोरं वृत्रवासवयोरिव॥ १३॥

बारम्बार घूँसों, लातों और जाँघों से प्रहार करते हुए उन दोनों का वह युद्ध वैसा ही घोर हुआ जैसा इन्द्र और वृत्र का हुआ था।

हीयमानमथोऽपश्यत्सुग्रीवं वानरेश्वरम्।
प्रेक्षमाणं विशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः॥ १४॥

जब श्रीराम ने देखा कि सुग्रीव का पराक्रम घट जाने के कारण वह बारम्बार इधर-उधर ताक रहा है तब—

ततो रामो महातेजा आर्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम्।
शरं धनुषि सन्धाय चापं पूरयामास च॥ १५॥

महातेजस्वी श्रीराम ने सुग्रीव को दुःखी देखकर अपने धनुष पर एक बाण का सन्धान कर उसका चिल्ला चढ़ाया।

१. यहाँ तारा को मन्त्रवित् कहा है। इस विशेषण से स्पष्ट है कि वह साधारण वानरी नहीं थी।



मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसन्निभः।
राघवेण महाबाणो बालिवक्षसि पातितः॥ १६॥

फिर श्रीराम ने अग्नि के समान देदीप्यमान और वज्र के समान भयंकर शब्द करनेवाला वह बाण बाली के हृदय को लक्ष्य करके छोड़ा।

ततस्तेन महातेजा वीर्योत्सिक्तकपीश्वरः।
वेगेनाभिहतो बाली निपपात महीतले॥ १७॥

बल-वीर्य से समन्वित और महातेजस्वी बाली श्रीराम के मर्मान्तक और अत्यन्त वेगवाले बाण से आहत होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

◀ द्वादशः सर्गः ▶ (१२)

बाली द्वारा राम की भर्त्सना—

तं तथा पतितं संख्ये गतार्चिषमिवानलम्।
उपयातौ महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ १॥

युद्ध-भूमि में बाली को ज्वालारहित अग्नि के समान पड़े हुए देखकर महापराक्रमी राम और लक्ष्मण उसके समीप गये।

तं दृष्ट्वा राघवं बाली लक्ष्मणं च महाबलम्।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं परुषं धर्मसंहितम्॥ २॥

महाबली राम और लक्ष्मण को अपने समीप उपस्थित देखकर बाली उनसे नम्रतापूर्वक ये धर्मयुक्त कठोर वचन बोला—

त्वं नराधिपतेः पुत्रस्तेजस्वी चरितव्रतः।
पराङ्मुखवधं कृत्वा को नु प्राप्तस्त्वया गुणः॥ ३॥

हे राम! तुम राजकुल में उत्पन्न, तेजस्वी और व्रतधारी कहलाते हो। तब दूसरे के साथ युद्ध करते हुए मेरा वध करके आपने कौन-सी ख्याति प्राप्त की?

सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढव्रतः।
इति ते सर्वभूतानि कथयन्ति यशो भुवि॥ ४॥

श्रीराम दयालु, उत्साही, समय को जाननेवाले और दृढ़ व्रतधारी हैं—इन गुणों से युक्त तुम्हारी कीर्ति संसार के सभी मनुष्य गा रहे हैं।

दमः शमः क्षमा धर्मो धृतिः सत्यं पराक्रमः।
पार्थिवानां गुणा राजन् दण्डश्चाप्यपराधिषु॥ ५॥

मनोनिग्रह, शान्ति, क्षमा, धर्म, धैर्य, सत्य, पराक्रम और अपराधियों को दण्ड देना—ये राजाओं के गुण हैं।

तान् गुणान् सम्प्रधार्याहमग्र्यं चाभिजनं तव।
तारया प्रतिषिद्धोऽपि सुग्रीवेण समागतः॥ ६॥

आपको श्रेष्ठ कुलोत्पन्न एवं इन राजोचित गुणों ये युक्त जानकर ही मैं तारा के मना करने पर भी सुग्रीव से युद्ध करने के लिए आया था।

न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं योद्धुमर्हति।
इति मे बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने॥ ७॥

दूसरे के साथ युद्ध में प्रवृत्त अतएव अपनी ओर से असावधान मेरे ऊपर श्रीराम तीर नहीं छोड़ेंगे, आपके दर्शन के बिना ही मैंने ऐसा निश्चय कर लिया था।

न त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम्।
जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम्॥ ८॥

उस समय मैं यह नहीं जानता था कि तुम आत्मघाती, कोरी धर्म की ध्वजा उड़ानेवाले, तृणों से ढके हुए, कुएँ की भाँति अधर्मी और पापाचारी हो।

सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम्।
नाहं त्वामभिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम्॥ ९॥

उस समय मैं यह भी नहीं जानता था कि तुम्हारा वेशमात्र सज्जनों जैसा है। वस्तुतः छिपी हुई अग्नि की भाँति तुम कपटी-धर्मानुष्ठानी हो।

विषये वा पुरे वा ते यदा नापकरोम्यहम्।
न च त्वामवजाने च कस्मात्त्वं हंस्यकिल्बिषम्॥ १०॥

हे राम! मैंने आपके राष्ट्र या नगर में कोई बुरा कर्म नहीं किया। मैंने आपका कोई अपमान भी नहीं किया फिर आपने मुझ निरपराधी को क्यों मारा है?



हत्वा बाणेन काकुत्स्थ मामिहानपराधिनम्।
किं वक्ष्यसि सतां मध्ये कृत्वा कर्म जुगुप्सितम्॥ ११॥

हे राम! मुझ जैसे निरपराधी को तीर से मारकर और ऐसा घृणित कर्म करके तुम सज्जनों के बीच में क्या कहोगे?

राजहा ब्रह्महा गोघ्नश्चोरः प्राणिवधे रतः।
नास्तिकः परिवेत्ता च सर्वे निरयगामिनः॥ १२॥

देखो! राजा को मारनेवाला, ब्राह्मण की हत्या करनेवाला, गोघाती, चोर, प्राणियों की हिंसा में तत्पर, नास्तिक और परिवेत्ता (ज्येष्ठ भ्राता से पूर्व विवाह करनेवाला)—ये सब नरकगामी=अधोयोनियों में जाते हैं।

सूचकश्च कदर्यश्च मित्रघ्नो गुरुतल्पगः।
लोकं पापात्मनामेते गच्छन्त्यत्र न संशयः॥ १३॥

निन्दक, कृपण, मित्रघाती और गुरु-स्त्रीगामी—ये सभी पापमय लोकों को प्राप्त होते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा।
प्रमदा शीलसम्पन्ना धूर्तेन पतिना यथा॥ १४॥

हे राम! जैसे धूर्त पति को प्राप्त करके शीलवती स्त्री सनाथा नहीं होती वैसे ही तुम जैसे शासक को पतिरूप में प्राप्त करके भी यह वसुन्धरा अनाथ ही है।

शठो नैष्कृतिकः क्षुद्रो मिथ्याप्रश्रितमानसः।
कथं दशरथेन त्वं जातः पापो महात्मना॥ १५॥

धूर्त, पर-अपकारी, नीच और झूठ-झूठ बनावटी शान्ति को धारण करनेवाला=अजितेन्द्रिय आप जैसा पापी पुत्र महात्मा दशरथ के यहाँ कैसे उत्पन्न हो गया?

उदासीनेषु योऽस्मासु विक्रमस्ते प्रकाशितः।
अपकारिषु तं राजन् न हि पश्यामि विक्रमम्॥ १६॥

हे राजन्! हमारे जैसे निरपराध और उदासीन व्यक्तियों पर आपने जैसा पराक्रम दिखलाया है मैं अपकारी और अपराधी व्यक्तियों के प्रति आपका वैसा पराक्रम नहीं देखता।

दृश्यमानस्तु युध्येथा मया यदि नृपात्मज।
अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया॥ १७॥

हे राजकुमार! यदि तुम मेरे सम्मुख होकर मुझसे युद्ध करते तो मेरे द्वारा मारे जाकर तुम्हें आज ही यमराज का अतिथि बनना पड़ता।

त्वयाऽदृश्येन तु रणे निहतोऽहं दुरासदः।
प्रसुप्तः पन्नगेनेव नरः पापवशं गतः॥ १८॥

परन्तु क्या कहूँ? तुमने तो छिपकर मुझे वैसे ही मारा है जैसे मद्यपान के वश में घोर निद्रा में सोये हुए व्यक्ति को साँप काट लेता है।

सुग्रीवप्रियकामेन यदहं निहतस्त्वया।
अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाऽहं निहतो रणे॥ १९॥

हे राम! यदि सुग्रीव को प्रसन्न करने के लिए तुमने मुझे मारा है तो भी आपके द्वारा अधर्मपूर्वक मेरा मारा जाना अनुचित ही है।

काममेवंविधो लोकः कालेन विनियुज्यते।
क्षमं चेद्भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम्॥ २०॥

मुझे अपनी मृत्यु का दुःख नहीं है, क्योंकि समय आने पर सभी उत्पन्न जीवधारी एक दिन मृत्यु को प्राप्त होते हैं। मुझे दुःख केवल इस बात का है कि तुम अपने इस अनुचित कृत्य का लोगों का क्या उत्तर दोगे? आप इसका ठीक-ठीक उत्तर सोच लें।

◀ त्रयोदशः सर्गः ▶ (१३)

श्रीराम का बाली को प्रत्युत्तर—

धर्मार्थगुणसम्पन्नं हरीश्वरमनुत्तमम्।
अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चात् बालिनमब्रवीत्॥ १॥

धर्म-अर्थ गुण सम्पन्न वाक्यों द्वारा राम पर कड़ा आक्षेप करनेवाले वानरेश्रेष्ठ बाली को उत्तर देते हुए श्रीराम कहने लगे—



धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम्।
अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे॥ २॥

अरे! धर्म, अर्थ, काम और लौकिक आचार को जाने बिना ही तुम मूर्खतावश मेरी निन्दा क्यों कर रहे हो?

अपृष्ट्वा बुद्धिसम्पन्नान् वृद्धानाचार्यसम्मतान्।
सौम्य वानरचापल्यात्किं मां वक्तुमिहेच्छसि॥ ३॥

हे सौम्य! मान्य आचार्यों और बुद्धिमान् बड़े-बूढ़ों से बिना पूछे वानर-स्वभाव-सुलभ चपलतावश क्या तुम मुझे इस विषय में उपदेश दे सकते हो?

इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना।
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि॥ ४॥

क्या तुम्हें पता नहीं कि वन, पर्वत और वाटिका आदि से परिपूर्ण यह समस्त भूमण्डल इक्ष्वाकुवंशियों के अधिकार में है। इस अखिल भूमण्डल में जितने पशु, पक्षी और मनुष्य रहते हैं उन सबको दण्ड देने अथवा उन पर अनुग्रह करने का अधिकार उन्हीं को है।

तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवागृजुः।
धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः॥ ५॥

धर्म-अर्थ-काम के तत्त्व को जाननेवाले, सत्यवादी, सरल-स्वभाव, अपराधियों को दण्ड देने और साधुओं पर अनुग्रह करने में तत्पर महात्मा भरत इस समय इस भूमण्डल पर शासन कर रहे हैं।

नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन् सत्यं च सुस्थितम्।
विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित्॥ ६॥

नीति, नम्रता, स्थिरता, सत्य और पराक्रम जिसमें विद्यमान हो, जो देश-कालवित् हो, वही राजा होने योग्य है। भरत में ये सभी गुण विद्यमान हैं।

तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः।
चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसन्तानमिच्छवः॥ ७॥

हम दोनों बन्धु तथा अन्य अनेक राजा लोग भरत के धर्मानुकूल आदेश से धर्मवृद्धि की कामना से इस सम्पूर्ण पृथिवी पर भ्रमण कर रहे हैं।

तस्मिन्नृपतिशार्दूले भरते धर्मवत्सले।
पालयत्यखिलां भूमिं कश्चरेद्धर्मनिग्रहम्॥ ८॥

उन राजसिंह और धर्मवत्सल महाराज भरत के राज्यशासन में किस मनुष्य में सामर्थ्य है जो धर्म-विरुद्ध कोई कर्म कर सके?

ते वयं धर्मविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिताः।
भरताज्ञां पुरस्कृत्य निगृह्णीमो यथाविधि॥ ९॥

अपने उत्कृष्ट धर्ममार्ग पर आरूढ़ रहनेवाले हम लोग भरत की आज्ञा का पालन करते हुए धर्मविरुद्ध आचरण करनेवाले लोगों को दण्ड दिया करते हैं।

त्वं तु संक्लिष्टधर्मा च कर्मणा च विगर्हितः।
कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि॥ १०॥

तुम धर्म का हनन करनेवाले, कुकर्म में रत और केवल काम के दास बनकर राजधर्म की उपेक्षा कर रहे हो।

ज्येष्ठो भ्राता पिता चैव यश्च विद्यां प्रयच्छति।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथि वर्तिनः॥ ११॥

धर्ममार्ग पर चलनेवाले ज्येष्ठ, भ्राता, पिता और विद्यादाता गुरु—ये तीनों ही पिता-तुल्य माने जाते हैं।

यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः।
पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चेदत्र कारणम्॥ १२॥

धर्म की व्यवस्था के अनुसार छोटा भाई, पुत्र और गुणवान् शिष्य—ये तीनों पुत्र के तुल्य ही माने गये हैं।

सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञेयः सतां धर्मःप्लवङ्गम।
न हि मां केवलं रोषात्त्वं विगर्हितुमर्हसि॥ १३॥

हे वानर! सज्जनों का धर्म ऐसा सूक्ष्म है कि सहज में उसे कोई जान नहीं सकता, अतः तुम केवल रोष में भरकर मुझे दोषी नहीं ठहरा सकते।

तदेतत्कारणं पश्यं यदर्थं त्वं मया हतः।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्॥ १४॥

मानवीय परम्परागत धर्म को छोड़कर तुम अपने छोटे भाई सुग्रीव की धर्मपत्नी का पत्नीवत् उपभोग कर रहे हो, यही कारण है जिसको लेकर मैंने तुम्हें प्राण-दण्ड दिया है।



अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत्॥ १५॥

इस महात्मा सुग्रीव के जीवित रहते हुए, इसकी भार्या रुमा के साथ जो तुम्हारी पुत्रवधू के समान है, तुम कामासक्त होकर पापाचरण करते हो।[१]

औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाऽप्यनुजस्य यः।
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः॥ १६॥

जो कोई सहोदरा भगिनी अथवा अपने छोटे भाई की स्त्री के साथ धर्मनिन्दित कामुकता का व्यवहार करता है उसके लिए प्राणदण्ड ही उचित दण्ड बतलाया गया है।

भरतस्तु महीपालो वयं चादेशवर्तिनः।
त्वं तु धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितुम्॥ १७॥

भाई भरत इस समय अखिल भूमण्डल के चक्रवर्ती सम्राट् हैं और हम लोग उनके आदेश-पालक हैं। तुमने धर्ममर्यादा का उल्लंघन किया है, अतः हम इसी उपेक्षा कैसे कर सकते हैं?

सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा।
दारराज्यनिमित्तं च निःश्रेयसि रतः स मे॥ १८॥

सुग्रीव मेरा मित्र है। मेरा जैसा मित्रभाव लक्ष्मण के प्रति है वैसा ही सुग्रीव के प्रति है। स्त्री तथा राज्य-प्राप्ति के प्रतिकार में वे भी मेरे कल्याण के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं।

वयस्यस्यापि कर्तव्यं धर्ममेवानुपश्यता।
शक्यं त्वयापि तत्कार्यं धर्ममेवानुपश्यता॥ १९॥

मित्रधर्म की ओर दृष्टि रखते हुए मुझे मित्र का उपकार करना ही चाहिए ऐसा समझकर मैंने तुम्हें दण्ड दिया है। धर्म की ओर दृष्टि रखते हुए तुम्हें यही उचित था कि तुम प्रार्थनापूर्वक इस दण्ड को ग्रहण करते।

श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ।
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तत्तथा चरितं हरे॥ २०॥

हे वानर! इस विषय में महर्षि मनु के शुभाचरण प्रतिपादक दो श्लोक सुने जाते हैं। इनको धर्मज्ञ पुरुषों ने स्वीकार किया है और मैं भी इन्हें मानता हूँ—

राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा[२]॥ २१॥

जो मनुष्य पापकर्म करने पर राजा द्वारा दण्डित किये जाते हैं, वे पाप से मुक्त होकर पुण्यात्मा पुरुषों की भाँति स्वर्गवासी होते हैं।

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते।
राजा त्वशासन्पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्[३]॥२२॥

जो चोर अथवा पापी स्वयं राजा के पास जाकर अपने पाप को स्वीकार कर लेता है और दण्ड चाहता है उसे राजा चाहे दण्ड दे अथवा क्षमा कर दे—दोनों अवस्थाओं में वह पापी पाप से मुक्त हो जाता है, परन्तु पापी को पाप का दण्ड न देने से राजा स्वयं उस पापी का भागी हो जाता है।

तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः।
वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः॥ २३॥

हे वानरशार्दूल! अब आप पश्चात्ताप न करें। आपको जो प्राणदण्ड दिया गया है यह धर्म की रक्षा के लिए ही दिया गया है। इस विषय में हम लोग स्वतन्त्र नहीं हैं, अपितु धर्मशास्त्र के अधीन हैं।

शृणु चाप्यपरं भूयः कारणं हरिपुङ्गव।
तत् श्रुत्वा हेतुमद्वीर न मन्युं कर्तुमर्हसि॥ २४॥

हे वानरश्रेष्ठ! दण्ड के विषय में तुम्हारे दूसरे प्रश्न का उत्तर भी मैं दे रहा हूँ। उसे सुनो और उसे सुनकर तुम अपने क्लेश और क्रोध को त्याग दो।

---

१. वानरजाति के लोग भी एक पति के जीवित रहते उसकी पत्नी को अपनी पत्नी बनाने के विरुद्ध थे। यही बात श्रीराम ने 'धरमाणस्य' पद के द्वारा बतलाई है। इसी से आगे चलकर सुग्रीव का बाली की पत्नी तारा को अपनी पत्नी बनाने का समर्थन होता है।

२. मनु० ८। ३१८ ३. मनु० ८। ३१६



न मे तत्र मनस्तापो न मन्युर्हरियूथप।
वागुराभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैर्नराः॥ २५॥
प्रतिच्छन्नाश्च दृश्याश्च गृह्णन्ति सुबहून् मृगान्।
प्रधावितान्वा वित्रस्तान् विस्त्रब्धाश्चापि विष्ठितान्॥२६॥

हे वानरराज! मैंने तुमको जो छिपकर मारा है, इसके लिए मेरे मन में न तो कोई सन्ताप है और न कोई दुःख ही है, क्योंकि अनेक शिकारी लोग जाल, फंदा और अनेक प्रकार के छल के द्वारा छिपकर या प्रत्यक्ष रूप में भागते हुए अथवा विश्वासपूर्वक बैठे हुए मृगों को पकड़ा ही करते हैं।

त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं रोषमास्थितः।
प्रदूषयसि मां धर्मे पितृपैतामहे स्थितम्॥ २७॥

तुम धर्म को न जानकर केवल क्रोध के वशीभूत होकर पिता-पितामह के मर्यादित धर्मपथ पर चलनेवाले मेरे ऊपर दोषारोपण कर रहे हो।

एवमुक्तस्तु रामेण बाली प्रव्यथितो भृशम्।
न दोषं राघवो दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः॥ २८॥

श्रीराम के इस प्रकार समझाने पर बाली को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। दण्ड का धार्मिक निर्णय हो जाने पर बाली ने श्रीराम को निर्दोष पाया।

प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः।
यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तदेवं नात्र संशयः॥ २९॥

तब वानरराज बाली ने हाथ जोड़कर श्रीराम से कहा—हे पुरुषोत्तम! आप जो कहते हैं वह निःसन्देह ठीक है।

यदयुक्तं मयापूर्वं प्रमादादुक्तमप्रियम्।
तत्रापि खलु मे दोषं कर्तुं नार्हसि राघव॥ ३०॥

हे राम! मैंने पहले प्रमादवश जो अप्रिय और अयुक्त वचन कहे हैं उसमें भी मुझे सर्वथा दोषी मत समझिए। (क्योंकि मैंने जो कुछ कहा था दुःखी अवस्था में कहा था।)

न त्वात्मानमहं शोचे न तारां न च बान्धवान्।
यथा पुत्रं गुणश्रेष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम्॥ ३१॥

अब मुझे अपने विषय में, तारा तथा अन्य बन्धु-बान्धवों के विषय में न कोई चिन्ता है और न ही किसी प्रकार का दुःख। इस समय मुझे केवल स्वर्ण-निर्मित बाजूबन्द धारण किये हुए अपने गुणवान् पुत्र अंगद की चिन्ता है।

स मामदर्शनाद्दीनो बाल्यात्प्रभृति लालितः।
तटाक इव पीताम्बुरूपशोषं गमिष्यति॥ ३२॥

बाल्यकाल से ही दुलार के साथ मेरे द्वारा लालित एवं पालित वह अङ्गद मेरे दिवङ्गत होने पर मुझे न देखकर सूखे हुए सरोवर के समान दुःख से सूख जायेगा।

बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः।
तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः॥ ३३॥

हे राम! तारा के गर्भ से उत्पन्न मेरा एकमात्र प्रिय पुत्र अङ्गद जो अभी बुद्धि में अपरिपक्व है, परन्तु महाबलशाली है, आपके द्वारा सर्वथा रक्षणीय है।

सुग्रीवे चाङ्गदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम्।
त्वं हि शास्ता च गोप्ता च कार्याकार्यविधौ स्थितः॥३४॥

सुग्रीव और अङ्गद के प्रति आप समान भाव से स्नेहमयी बुद्धि रखें, क्योंकि इस समय आप ही उनके रक्षक और शासनकर्ता हैं तथा कर्ता कर्तव्याकर्तव्य के बारे में आप ही उनके शिक्षक हैं।

या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणेन च या।
सुग्रीवे चाङ्गदे राजंस्तां त्वमाधातुमर्हसि॥ ३५॥

हे राजन्! आपकी जैसी स्नेहमयी वृत्ति भरत और लक्ष्मण के प्रति है वैसी ही स्नेहपूर्ण दयामय वृत्ति आप सुग्रीव और अङ्गद के प्रति भी रखें।

मद्दोषकृतदोषां तां यथा तारां तपस्विनीम्।
सुग्रीवो नावमन्येत तथाऽवस्थातुमर्हसि॥ ३६॥

मेरे अपराधों को लेकर सुग्रीव तपस्विनी तारा का अपमान न करे अथवा निकाल न दे, आप ऐसी व्यवस्था कर दीजिएगा।

इत्युक्त्वा सन्नतो रामं विरराम हरीश्वरः।
स तमाश्वासयद्रामो धर्मतत्त्वार्थयुक्तया॥ ३७॥

श्रीराम से इस प्रकार कहकर वानरराज बाली

चुप हो गया। तदनन्तर श्रीराम धर्मार्थयुक्त वचनों से उसे समझाने लगे।

न सन्तापस्त्वया कार्य एतदर्थं प्लवङ्गम।
न वयं भवता चिन्त्या नाप्यात्मा हरिसत्तम॥ ३८॥

हे वानरश्रेष्ठ! आप मेरी चिन्ता न करें और अपनी तथा अपने आत्मीय जीनों की भी चिन्ता न करें।

वयं भवद्विशेषेण धर्मतः कृतनिश्चयाः।
त्यज शोकं च मोहं च भयं च हृदये स्थितम्॥ ३९॥

आपके कथन से पूर्व ही हम लोगों ने आपके इच्छित विचारों को मूर्तरूप देने का निश्चय कर लिया है, अतः अब तुम शोक और मोह को त्यागकर अपने मन का खटका दूर कर दो।

➤ चतुर्दशः सर्गः ➤ (१४)

तारा का आगमन एवं विलाप—

तं भार्या बाणमोक्षेण रामदत्तेन संयुगे।
हतं प्लवगशार्दूलं तारा शुश्राव बालिनम्॥ १॥

''संग्राम में वानरश्रेष्ठ बाली राम के द्वारा मारा गया'' —इस समाचार को बाली की स्त्री तारा ने भी सुना।

सा सपुत्राप्रियं श्रुत्वा वधं भर्तुः सुदारुणम्।
निष्पपात भृशं त्रस्ता मृगीव गिरिह्वरात्॥ २॥

पति की मृत्यु का हृदयविदारक समाचार सुनकर घबराई हुई भयभीत मृगी के समान वह तारा अपने पुत्र अङ्गद को साथ लेकर उस पर्वतीय प्रासाद से बाहर निकल पड़ी।

आव्रजन्ती ददर्शाथ पतिं निपतितं भुवि।
समीक्ष्य व्यथिता भूमौ सम्भ्रान्ता निपपात ह॥ ३॥

वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि उसका पति भूमि पर पड़ा हुआ है। अपने पति को इस अवस्था में पड़े हुए देखकर तारा अत्यन्त व्यथित हुई और उद्विग्न होकर भूमि पर गिर पड़ी।

सुप्तेव पुनरुत्थाय आर्यपुत्रेति क्रोशती।
रुरोद सा पतिं दृष्ट्वा सन्दितं मृत्युदामभिः॥ ४॥

थोड़ी देर के पश्चात् तारा सोते हुए-से मानो पुनः उठकर और अपने पति को 'हा! आर्यपुत्र!' ऐसा कहती हुई मृत्यु के पाश में बँधे हुए अपने पति को देखकर रोने लगी।

सा समासाद्य भर्तारं पर्यष्वजत भामिनी।
इषुणाभिहतं दृष्ट्वा बालिनं कुञ्जरोपमम्॥ ५॥

वानरेन्द्रं महेन्द्राभं शोकसन्तप्तमानसा।
तारा तरुमिवोन्मूलं पर्यदेवयदातुरा॥ ६॥

तारा अपने पति के समीप जाकर उससे लिपट गई, फिर हाथी तथा पर्वत के समान विशालकाय, बाण के द्वारा आहत और मूल कटे हुए वृक्ष के समान गिरे हुए वानरेन्द्र बाली को देखकर शोक-संतप्त तारा विलाप करने लगी।

रणे दारुणविक्रान्त प्रवीर प्लवतां वर।
किं दीनमनुरक्तां मामद्य त्वं नाभिभाषसे॥ ७॥

युद्ध में दारुण विक्रम दिखलाने वाले, उत्कृष्ट वीर और वानरश्रेष्ठ! तुम इस समय दीन-दुःखी और आपमें अनुराग रखनेवाली मुझसे वार्तालाप क्यों नहीं करते?

उतिष्ठ हरिशार्दूल भजस्व शयनोत्तमम्।
नैवंविधाः शेरते हि भूमौ नृपतिसत्तमाः॥ ८॥

हे वानरश्रेष्ठ! उठो और उठकर उत्तम शय्या पर शयन करो, क्योंकि आपके समान नृपतिश्रेष्ठ भूमि पर शयन नहीं करते।

हृदयं सुस्थिरं मह्यं दृष्ट्वा विनिहतं पतिम्।
यन्न शोकाभिसन्तप्तं स्फुटतेऽद्य सहस्रधा॥ ९॥

हाय! मेरा यह हृदय कैसा कठोर है जो भूमि पर पड़े हुए आपको देखकर भी, शोक से सन्तप्त हो सहस्रों टुकड़े नहीं हो जाता।

वैधव्यं शोकसन्तापं कृपणं कृपणा सती।
अदुःखोपचिता पूर्वं वर्तयिष्याम्यनाथवत्॥ १०॥

हाय! पहले मैंने इस प्रकार का दुःख कभी अनुभव



नहीं किया था, किन्तु अब सुख में पली हुई मुझे विधवापन का शोक और सन्ताप भोगना पड़ेगा।

लालितश्चाङ्गदो वीरः सुकुमारः सुखोचितः।
वत्स्यते कामवस्थां मे पितृव्ये क्रोधमूर्छिते॥ ११॥

सुखपूर्वक पाला हुआ वह सुकुमार अङ्गद अपने क्रोधी चाचा सुग्रीव के शासन में किस प्रकार रहेगा?

कुरुष्व पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम्।
दुर्लभं दर्शनं वत्स तव तस्य भविष्यति॥ १२॥

हे पुत्र! तुम अपने धर्मवत्सल पिता का अन्तिम बार दर्शन कर लो, क्योंकि फिर इनका दर्शन तुम्हारे लिए दुर्लभ हो जायेगा।

समाश्वासय पुत्रं त्वं सन्देशं सन्दिशस्व च।
मूर्ध्नि चैनं समाघ्राय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि॥ १३॥

हे नाथ! अपने पुत्र अङ्गद को ढांढस बँधाओ और मुझे भी जो सन्देश देना हो वह दे दो। अपने पुत्र अङ्ग का सिर सूंघ उससे प्रेम करो, क्योंकि अब आप सदा के लिए परदेश जा रहे हो।

सकामो भव सुग्रीव रुमां त्वं प्रतिपत्स्यसे।
भुङ्क्ष्व राज्यमनुद्विग्नः शस्तो भ्राता रिपुस्तव॥ १४॥

हे सुग्रीव! तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया। रुमा अब तुम्हें प्राप्त हो जायेगी। अब तुम निर्द्वन्द्व होकर इस अकण्ट राज्य को भोगो, क्योंकि जिससे तुम्हें भय था वह तुम्हारा शत्रुभूत भाई मारा गया।

तथा तु तारा करुणं रुदन्ती
भर्तुः समीपे सह वानरीभिः।
व्यवस्यत प्रायमुपोपवेष्टु-
मनिन्द्यवर्णा भुवि यत्र बाली॥ १५॥

राजपरिवार की स्त्रियों के साथ अपने पति के समीप करुणापूर्ण विलाप करते हुए अनिन्द्य सुन्दरी तारा ने भूमि पर पड़े हुए अपने पति के समीप बैठ प्रायोपवेश (अन्न-जल त्यागकर प्राणत्याग) करने का निश्चय कर लिया।

➤ पञ्चदशः सर्गः ➤ (१५)

हनुमान् का तारा को आश्वासन देना—

ततो निपतितां तारां च्युतां तारामिवाम्बरात्।
शनैराश्वासयामास हनुमान् हरियूथपः॥ १॥

आकाश से टूटे हुए तारे की भाँति तारा को पृथिवी पर लोटते देख वानरयूथपति हनुमान्जी शनैः-शनैः उसे समझाने लगे—

गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्म फलहेतुकम्।
अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम्॥ २॥

वे बोले—प्राणी अपने किये हुए अच्छे या बुरे कर्मों का फल सुख अथवा दुःख मरने के पश्चात् भी भोगते हैं।

शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनाऽनुकम्पसे।
कस्य को वाऽनुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन् बुद्बुदोपमे॥३॥

शोकाक्रान्त आप किसके लिए शोक कर रही हैं, आप स्वयं दीन-दुःखी हैं, फिर अङ्गदादि प्रियजनों पर तुम क्या अनुकम्पा कर सकती हो? जल बुद्बुदे के समान यह जीवन क्षणभङ्गुर है फिर कौन किसके लिए शोक करेगा?

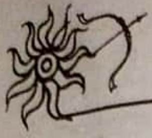
अङ्गदस्तु कुमारोऽयं द्रष्टव्यो जीवपुत्रया।
आयात्यां च विधेयानि समर्थान्यस्य चिन्तय॥ ४॥

आप अपने इस जीवित पुत्र कुमार अङ्गद की देख-भाल कीजिए और इसके भविष्य के कल्याण के लिए जो-जो करना योग्य है उस सम्बन्ध में सोचिए।

जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम्।
तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डितेनेह लौकिकम्॥ ५॥

प्राणियों का जीवन-मरण किस प्रकार अनिश्चित है इस बात को जानते हुए बुद्धिमान् को चाहिए कि वह सदा उत्तम कर्म ही करे।

यदयं न्यायदृष्टार्थः सामदानक्षमापरः।
गतो धर्मजितां भूमिं नैनं शोचितुमर्हसि॥ ६॥



बाली न्यायपूर्वक शासन करते थे तथा साम, दान और क्षमा में सदा तत्पर रहते थे। वह उस लोक में गये हैं जिसमें धर्माचरण करने वाले पुरुष जाया करते हैं। अतः उनके लिए शोक करना उचित नहीं है।

संस्कार्यो हरिराजस्तु अङ्गदश्चाभिषिच्यताम्।
सिंहासनगतं पुत्रं पश्यन्ती शान्तिमेष्यसि॥ ७॥

इस समय आप वानरराज बाली का अन्त्येष्टि-संस्कार कराइए और राजकुमार अङ्गद का राज्याभिषेक कीजिए। अपने पुत्र को राज्यसिंहासन पर आरूढ़ देखकर तेरे चित्त का उद्वेग दूर होगा और तुझे शान्ति प्राप्त होगी।

सा तस्य वचनं श्रुत्वा भर्तृव्यसनपीडिता।
अब्रवीदुत्तरं तारा हुनमन्तमवस्थितम्॥ ८॥

पति के निधन से दुःखी तारा हनुमान्‌जी के इन वचनों को सुनकर समीप खड़े हुए हनुमान्‌जी से कहने लगी—

न चाहं हरिराजस्य प्रभवाम्यङ्गदस्य वा।
पितृव्यस्तस्य सुग्रीवः सर्वकार्येष्वनन्तरः॥ ९॥

न तो मैं अपने पति का अग्नि-संस्कार ही कर सकती हूँ और न ही अङ्गद को राज्यसिंहासन पर बैठा सकती हूँ। अब तो अङ्गद के चाचा सुग्रीव ही समीपी तथा समर्थ होने के कारण सम्पूर्ण कार्यों के उत्तराधिकारी हैं।

◀ षोडशः सर्गः ▶ (१६)

बाली का अन्तिम सन्देश और मृत्यु—

वीक्षमाणस्तु मन्दासुः सर्वतो मन्दमुच्छ्वसन्।
आदावेव तु सुग्रीवं ददर्शानुजमग्रतः॥ १॥

क्षीण प्राणोंवाले बाली ने शनैः-शनैः श्वास लेते हुए अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा तो सर्वप्रथम आगे खड़ा हुआ अपना छोटा भाई सुग्रीव उसे दीख पड़ा।

तं प्राप्तविजयं बाली सुग्रीवं प्लवगेश्वरः।
आभाष्य व्यक्तया वाचा सस्नेहमिदमब्रवीत्॥ २॥

वानरराज विजयी सुग्रीव को देखकर उसे सम्बोधित करते हुए बाली ने उससे स्नेहपूर्वक ये स्पष्ट वचन कहे—

सुग्रीव दोषेण न मां गन्तुमर्हसि किल्बिषात्।
कृष्यमाणं भविष्येण बुद्धिमोहेन मां बलात्॥ ३॥

हे सुग्रीव! पूर्वजन्म के कुसंस्कारों के कारण तथा बुद्धि के विपरीत होने से मैंने तुम्हारे प्रति जो दुर्व्यवहार किया उसके लिए तुम मुझे दोषी मत समझना।

युगपद्विहितं तात न मन्ये सुखमावयोः।
सौहार्दं भ्रातृभुक्तं हि तदिदं तात नान्यथा॥ ४॥

हे तात! हम लोगों के भाग्य में दोनों भाइयों का एक साथ राजभोग तथा सुख एवं शान्तिपूर्वक रहना नहीं लिखा था। भाई के साथ रहने से तो भ्रातृप्रेम होना चाहिए था वह न होकर उल्टा आपस में वैर ही हुआ।

प्रतिपद्य त्वमद्यैव राज्यमेषां वनौकसाम्।
मामप्यद्यैव गच्छन्तं विद्धि वैवस्वतक्षयम्॥ ५॥

तुम आज ही इन वनवासियों के समृद्ध राज्य को प्राप्त कर लो, क्योंकि मैं आज ही यमपुरी को प्रस्थान कर रहा हूँ। ऐसा तुम निश्चित जानो।

अस्यां त्वहमवस्थायां वीर वक्ष्यामि यद्वचः।
यद्यप्यसुकरं राजन् कर्तुमेव तदर्हसि॥ ६॥

हे वीर! इस मरणासन्नावस्था में मैं कुछ बातें तुमसे कहता हूँ। यद्यपि उनका करना कठिन है तथापि हे राजन्! तुम्हें उन्हें अवश्य करना चाहिए।

सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनमबालिशम्।
बाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमङ्गदम्॥ ७॥

सुख पाने का अधिकारी, सुख-समृद्धि में पले हुए, बालक होने पर भी बुद्धिमान्, अश्रुपूर्ण मुखवाले भूमि पर पड़े हुए मेरे इस प्रिय अङ्गद को देखो।



मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवौरसम्।
मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय॥ ८॥

प्राणों से प्रिय मेरे पुत्र अङ्गद को तुम अपने औरस पुत्र के समान समझना। मेरी मृत्यु के कारण यह अनाथ हो गया है अब तुम्हीं इसके सर्वस्व हो, अतः इसका सब प्रकार से पालन करना।

त्वमेवास्य हि दाता च परित्राता च सर्वतः।
भयेष्वभयदश्चैव यथाऽहं प्लवगेश्वर॥ ९॥

हे वानरराज! मेरी भाँति अब तुम्हीं इस अङ्गद के भोजन और वस्त्राभरण प्रदाता, सब प्रकार से रक्षक और भय उपस्थित होने पर अभय प्रदान करनेवाले हो।

एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः।
रक्षसां तु वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति॥ १०॥

यह तारापुत्र अङ्गद तुम्हारे ही समान शोभावान् और पराक्रमी है तथा राक्षसों के संहार में यह तुमसे आगे बढ़कर लड़ेगा।

अनुरूपाणि कर्माणि विक्रम्य बलवान् रणे।
करिष्यत्येष तारेयस्तरस्वी तरुणोऽङ्गदः॥ ११॥

बलवान्, तेजस्वी और तरुण तारा-पुत्र अङ्गद संग्राम में मेरे समान ही शौर्य आदि का परिचय देगा।

सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये।
औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता॥ १२॥

सुषेण की पुत्री यह तारा सूक्ष्म विषयों के निश्चय करने और भविष्य में होनेवाले विविध प्रकार के उत्पातों को जानने में अत्यन्त निपुण है।

यदेषा साध्विति ब्रूयात्कार्यं तन्मुक्तसंशयम्।
न हि तारा मतं किञ्चिदन्यथा परिवर्तते॥ १३॥

अतः यह तारा जिस कार्य को करने का परामर्श दे उसे निःशंक होकर करना, क्योंकि देवी तारा का कोई भी विचार उल्टा नहीं होता।

राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया।
स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्याद्विमानितः॥ १४॥

तुमने श्रीराम का कार्य करने की जो प्रतिज्ञा की है उसे भी निःशंक होकर करना, क्योंकि इसके न करने से अधर्म होगा और राम इसे अपना अपमान समझकर तुम्हारा वध कर डालेंगे।

इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव काञ्चनीम्।
उदारा श्रीः स्थिता ह्यस्यां संप्रजह्यान्मृते मयि॥ १५॥

हे सुग्रीव! मेरे गले में पड़ी हुई इस स्वर्णमयी दिव्य माला को जिसमें सुखसमृद्धि और विजयश्री का वास है, मेरे जीवित रहते ही मेरे गले से निकालकर अपने गले में धारण कर लो, क्योंकि मेरे मरने के पश्चात् इसकी शक्ति क्षीण हो जायेगी।

इत्येवमुक्तः सुग्रीवो बालिना भ्रातृसौहृदात्।
हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनो ग्रहग्रस्त इवोडुराट्॥ १६॥

भ्रातृप्रेम में भरकर जब बाली ने सुग्रीव से ऐसे स्नेहयुक्त वचन कहे, तब सुग्रीव विजयजन्य प्रसन्नता को त्याग, ग्रहग्रस्त चन्द्रमा के समान म्लान मुख हो गये।

तद्बालिवचनाच्छान्तः कुर्वन्युक्तमतन्द्रितः।
जग्राह सोऽभ्यनुज्ञातो मालां तां चैव काञ्चनीम्॥ १७॥

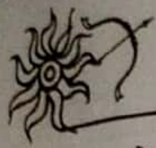
बाली के इन वचनों को सुनकर सुग्रीव का वैर शान्त हो गया तथा वे स्वस्थचित्त और आलस्य रहित होकर बाली के कथनानुसार सम्पूर्ण कार्य करने लगे। उसने बाली द्वारा प्रदत्त वह स्वर्णमाला अपने गले में धारण कर ली।

तां मालां काञ्चनीं दत्त्वा
बाली दृष्ट्वाऽऽत्मजं स्थितम्।
संसद्धिः प्रेत्यभावाय
स्नेहादङ्गदमब्रवीत्॥ १८॥

उस स्वर्णमाला को सुग्रीव को प्रदान कर मरणोन्मुख बाली अपने प्रस्थान से पूर्ण अपने समक्ष खड़े हुए अङ्गद से स्नेहपूर्वक बोला—

देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये।
सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव॥ १९॥

हे अङ्गद! प्रिय और और अप्रिय बातों को सहते हुए तुम देशकाल के अनुसार कार्य करना तथा सुख-



दुःख को भोगते हुए सदा सुग्रीव के अधीन रहना।

मास्यामित्रैर्गतं गच्छेर्मा शत्रुभिररिन्दम।
भर्तुरर्थपरो दान्तः सुग्रीववशगो भव॥ २०॥

हे शत्रुसंहारक! सुग्रीव के जो शत्रु हैं, उनके मित्रों से तुम मैत्री मत करना और सुग्रीव के शत्रुओं से भी मित्रता मत रखना, अपितु अपने स्वामी सुग्रीव के हित-साधन में तत्पर रहकर तथा जितेन्द्रिय बनकर इनके आदेशानुसार ही चलना।

इत्युक्त्वाऽथ विवृत्राक्षः शरसंपीडितो भृशम्।
विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रान्तजीवितः॥ २१॥

इतना कहकर बाण के आघात से अत्यन्त पीड़ित बाली ने दोनों नेत्र और दाँतों को फैलाकर प्राण त्याग दिये।

➤ सप्तदशः सर्गः ➤ (१७)

तारा का विलाप और अङ्गद का अभिवादन—

ततः समुपजिघ्रन्ती कपिराजस्य तन्मुखम्।
पतिं लोकाच्युतं तारा मृतं वचनमब्रवीत्॥ १॥

अपने स्वर्गगत मृतपति कपिराज बाली के मुख को सूंघती हुई तारा उसे सम्बोधित करते हुए बोली—

शेषे त्वं विषमे दुःखमनुक्त्वा वचनं मम।
उपलोपचिते वीर सुदुःखे वसुधातले॥ २॥

हे वीर! मेरी प्रार्थना को न मानने के कारण ही आप दुःख देनेवाली इस ऊँची-नीची पथरीली भूमि पर सोये पड़े हैं।

मत्तः प्रियतरा नूनं वानरेन्द्र मही तव।
शेषे हि तां परिष्वज्य मां च न प्रतिभाषसे॥ ३॥

हे वानरनाथ! निश्चय ही यह भूमि आपको मुझसे भी अधिक प्रिय प्रतीत हो रही है, क्योंकि आप इसका आलिंगन कर मुझसे बात भी नहीं कर रहे हैं।

विशुद्धसत्त्वाभिजन प्रिययुद्ध मम प्रिय।
मामनाथां विहायैकां गतस्त्वमसि मानद॥ ४॥

हे विशुद्ध कुलोद्भव! हे युद्ध-प्रेमी! हे मेरे प्राणनाथ! हे मेरे सम्मानदाता! मुझे असहाय और अनाथ छोड़कर तुम कहाँ चल दिये।

शूराय न प्रदातव्या कन्या खलु विपश्चिता।
शूरभार्यां हतां पश्य सद्यो मां विधवां कृताम्॥ ५॥

बुद्धिमान् लोगों को चाहिए कि शूरवीरों के साथ कभी अपनी पुत्री का विवाह न करें, क्योंकि देखो न! वीर की पत्नी मैं बात-की-बात में विधवा होकर मृतक के समान हो गई।

अवभग्नश्च मे मानो भग्ना मे शाश्वती गतिः।
अगाधे च निमग्नास्मि विपुले शोकसागरे॥ ६॥

हाय! आज मेरा मान-सम्मान सब नष्ट हो गया और मेरे जीवन की सम्पूर्णगति भी आज अवरुद्ध हो गई। इस समय मैं अथाह शोकसागर में डूब रही हूँ।

अश्मसारमयं नूनमिदं मे हृदयं दृढम्।
भर्तारं निहतं दृष्ट्वा यन्नाद्य शतधा गतम्॥ ७॥

निश्चय ही मेरा हृदय वज्र के समान कठोर है जो अपने पति को मरा हुआ देखकर भी सौ टुकड़े नहीं हो जाता।

पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी।
धनधान्यैः सुपूर्णाऽपि विधवेत्युच्यते जनैः॥ ८॥

जो स्त्री पतिहीन है वह चाहे पुत्रवती हो और चाहे धन-धान्य से समृद्ध हो—लोग उसे विधवा ही कहते हैं।

उवाच तारा पिङ्गाक्षं पुत्रमङ्गदमङ्गना।
अभिवादय राजानं पितरं पुत्र मानदम्॥ ९॥

विलाप करते-करते देवी तारा पीले नेत्रोंवाले अपने पुत्र अङ्गद से बोली—हे पुत्र! मानप्रदाता अपने पूज्य



पिता महाराज बाली को अन्तिम प्रणाम करो।

एवमुक्तः समुत्थाय जग्राह चरणौ पितुः।
भुजाभ्यां पीनवत्ताभ्यामङ्गदोऽहमिति ब्रुवन॥ १०॥

देवी तारा के ऐसा कहने पर अङ्गद ने उठकर अपनी मोटी-मोटी भुजाओं से पिता के चरणों का स्पर्श करते हुए "मैं अङ्गद हूँ"—ऐसा कहा।[1]

अभिवादयमानं त्वामङ्गदं त्वं यथा पुरा।
दीर्घायुर्भव पुत्रेति किमर्थं नाभिभाषसे॥ ११॥

(अङ्गद के प्रणाम करने पर तारा ने बाली को सम्बोधित करते हुए कहा)—जिस प्रकार पहले प्रणाम करने पर तुम अङ्गद को आशीर्वाद देकर कहा करते थे कि "दीर्घायु हो"—अब आप वैसा आशीर्वाद क्यों नहीं देते?

न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतं
न चास्मि शक्ता विनिवारणे तव।
हता सपुत्राऽस्मि हतेन संयुगे
सह त्वया श्रीर्विजहाति मामिह॥ १२॥

मेरे हितपूर्ण वचनों पर आपने ध्यान नहीं दिया। समझाने के अतिरिक्त आपको रोकने की शक्ति मुझमें भी नहीं थी। इसका परिणाम यह हुआ कि युद्ध में आपके मारे जाने से मैं भी पुत्र सहित विनाश को प्राप्त हुई। आपके मरने से ऐश्वर्य, कान्ति और राज्यलक्ष्मी ने मेरा भी परित्याग कर दिया।

➤ अष्टादशः सर्गः ➤ (१८)

सुग्रीव का विषाद एवं राम का उन्हें सान्त्वना देना—

तां त्वश्रुवेगेन दुरासदेन
त्वभिप्लुतां शोकमहार्णवेन।
पश्यंस्तदा बाल्यनुजस्तरस्वी
भ्रातुर्वधेनाप्रतिमेन तेपे॥ १॥

अत्यन्त वेगवान्, अत्यन्त कठिनाई से पार होने योग्य शोकरूपी महासागर में डूबती हुई तारा को देखकर बाली के छोटे भाई सुग्रीव भाई के मारे जाने से अत्यन्त दुःखी हुए।

स बाष्पपूर्णेन मुखेन वीक्ष्य
क्षणेन निर्विण्णमना मनस्वी।
जगाम रामस्य शनैः समीपं
भृत्यैर्वृतो राघवमित्युवाच॥ २॥

रोती हुई तारा की विपन्नावस्था को देखकर मनस्वी सुग्रीव बहुत दुःखी हुए, उनके हृदय में एक प्रकार का वैराग्य-सा उत्पन्न हो गया। ऐसे दुःखी सुग्रीव अपने अनुचरों से घिरे हुए राम के समीप पहुँचकर उनसे बोले—

अस्यां महिष्यां तु भृशं रुदत्यां
पुरे च विक्रोशति दुःखतप्ते।
हतेऽग्रजे संशयितेऽङ्गदे च
न राम राज्ये रमते मनो मे॥ ३॥

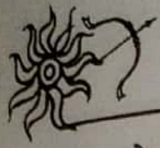
हे राम! महारानी तारा के करुणामय रुदन को देखकर, पुरवासियों के दारुण विलाप और पितृवियोग के कारण संशयापन्न राजकुमार अङ्गद के जीवन को देखकर अब राज्य करने को मेरा जी नहीं चाहता।

भ्राता कथं नाम महागुणस्य
भ्रातुर्वधं राघव रोचयेत।
राज्यस्य दुःखस्य च वीर सारं
न चिन्तयन् कामपुरस्कृतः सन्॥ ४॥

हे राम! पतित-से-पतित स्वार्थी भ्राता भी अपने

---

१. जो लोग सुग्रीव आदि को आजकल के जंगली बन्दर की भाँति समझते हैं वे तनिक इस प्रकरण को देखें। क्या बन्दर इस प्रकार नमस्ते करते हैं?



गुणवान् बड़े भाई का वध कभी पसन्द नहीं करेगा। मैंने कामासक्त होने के कारण राज्यसुख और भ्रातृवध के पश्चात् होनेवाले दारुण दुःख—इन दोनों के परिणाम पर कभी विचार नहीं किया।

वधो हि मे मतो नासीत्स्वमाहात्म्यव्यतिक्रमात्।
ममासीद्बुद्धिदौरात्म्यात्प्राणहारी व्यतिक्रमः॥ ५॥

अपने गौरव और यश की हानि के कारण भाई बाली को मेरा वध कभी भी अभीष्ट नहीं था, परन्तु मैं अपनी नीच बुद्धि के कारण सदा भाई के वध की चेष्टा किया करता था।

द्रुमशाखावभग्नोऽहं मुहूर्तं परिनिष्टनन्।
सान्त्वयित्वा त्वनेनोक्तो न पुनः कर्तुमर्हसि॥ ६॥

बाली द्वारा वृक्ष की शाखाओं से आहत होने पर जब मैंने दीनतापूर्वक आपको पुकारा तब भाई बाली ने मुझे आश्वासन देते हुए यही कहा—जाओ, फिर ऐसी धृष्टता कभी मत करना।

भ्रातृत्वमार्यभावश्च धर्मश्चानेन रक्षितः।
मया क्रोधश्च कामश्च कपित्वं च प्रदर्शितम्॥ ७॥

हे राघव! भाई बाली ने तो अपने भ्रातृभाव, श्रेष्ठता और धर्म की रक्षा करते हुए अपने बड़प्पन का परिचय दिया, परन्तु मैंने क्रोध तथा स्वार्थ को आश्रय देते हुए जघन्य चञ्चलता का परिचय दिया है।

सुतः सुलभ्यः सुजनः सुवश्यः
कुतः सुपुत्रः सदृशोऽङ्गदेन।
न चापि विद्यते स वीर देशो
यस्मिन् भवेत्सोदरसन्निकर्षः॥ ८॥

हे राम! सज्जन तथा वश में रहनेवाले पुत्र मिलना सहज है, परन्तु अङ्गद के समान गुणवान् पुत्र मिलना कठिन है फिर हे वीर! संसार में ऐसा कोई देश दिखाई नहीं देता जहाँ सहोदर बन्धु प्राप्त हो सके।

इत्येवमार्तस्य रघुप्रवीरः
श्रुत्वा वचो बाल्यनुजस्य तस्य।
सञ्जातबाष्पः परवीरहन्ता
रामो मुहूर्तं विमना बभूव॥ ९॥

भ्रातृवध से दुःखी बाली-अनुज सुग्रीव ने आर्त्त होकर जब इस प्रकार के वचन कहे तब इन बातों को सुनकर शत्रुतापी श्रीराम के नेत्र भी सजल हो गये और एक मुहूर्त के लिए वे उदास हो गये।

तस्मिन् क्षणेऽभीक्ष्णमवेक्ष्यमाणः
क्षितिक्षमावान् भुवनस्य गोप्ता।
रामो रुदन्तीं व्यसने निमग्नां
समुत्सुकः सोऽथ ददर्श ताराम्॥ १०॥

उसी समय इधर-उधर देखते हुए पृथिवी के समान क्षमाशील और सम्पूर्ण विश्व के रक्षक श्रीराम रोती हुई और दुःखसागर में डूबी हुई तारा को उत्सुकतापूर्वक देखने लगे।

तां चारुनेत्रां कपिसिंहनाथं
पतिं समाश्लिष्य तदा शयानाम्।
उत्थापयामासुरदीनसत्त्वां
मन्त्रिप्रधानाः कपिवीरपत्नीम्॥ ११॥

इसी बीच में प्रधानमन्त्री आदि श्रेष्ठ पुरुषों ने सुन्दर नेत्रोंवाली वानरराज बाली की पत्नी तारा को, जो पति का आलिङ्गन किये हुए भूमि पर लेट रही थी, उठाकर अलग किया।

सा विस्फुरन्ती परिरभ्यमाणा
भर्तुः सकाशादपनीयमाना।
ददर्श रामं शरचापपाणिं
स्वतेजसा सूर्यमिव ज्वलन्तम्॥ १२॥

पति के समीप से दूर जाने पर तारा बहुत छटपटाई। जब मन्त्रिगण उसे राम के समीप ले गये तब तारा ने अपने तेज से देदीप्यमान सूर्य के सदृश धनुष-बाणधारी श्रीराम को देखा।

सा तं समासाद्य विशुद्धसत्त्वं
शोकेन सम्भ्रान्तशरीरभावा।
मनस्विनी वाक्यमुवाच तारा
रामं रणोत्कर्षणलब्धलक्षम्॥ १३॥

अत्यन्त शोक के कारण अपने शरीर से बेसुध मनस्विनी तारा विमल बुद्धिवाले रणविशारद एवं



लक्ष्यवेधी राम के पास जाकर बोली—

येनैकबाणेन हतः प्रियो मे
तेनैव मां त्वं जहि सायकेन।
हता गमिष्यामि समीपमस्य
न मामृते राम रमेत बाली॥ १४॥

हे राम! आपने जिस तीर से मेरे प्राणप्रिय पति बाली को मारा है उसी तीर से आप मुझे भी मार डालिए। मरकर मैं बाली के पास जाऊँगी, क्योंकि मेरे बिना बाली वहाँ प्रसन्न नहीं रह सकेगा।

यच्चापि मन्येत भवान् महात्मा
स्त्रीघातदोषो न भवेत्तु मह्यम्।
आत्मेयमस्येति च मां जहि त्वं
न स्त्रीवधः स्यान्मनुजेन्द्रपुत्र॥ १५॥

यदि उदारचेता आप यह समझें कि तारा के वध से मुझे स्त्रीवध का दोष लगेगा तो आप अपने मन की शंका दूर कर डालें। पत्नी पति की आत्मा होती है—अतः तारा बाली की आत्मा है, ऐसा समझकर आप मुझे मारें। इस प्रकार हे नरेन्द्रपुत्र! आपको स्त्रीवध का दोष नहीं लगेगा।

इत्येवमुक्तस्तु विभुर्महात्मा
तारां समाश्वास्य हितं बभाषे।
मा वीरभार्ये विमतिं कुरुष्व
सुखदुःखयोगं कृतं विधात्रा॥ १६॥

तारा के ऐसा कहने पर प्राणिमात्र के हितैषी श्रीराम ने तारा को समझाते हुए उससे ये हितकर वचन कहे—हे वीरपत्नी! बुद्धि विपरीत तुम मृत्यु की कामना मत करो। कर्मानुकूल सुख-दुःख का योग तो उसी सर्वनियन्ता परमात्मा का विधान है।

त्रयो हि लोका विहितं विधानं
नातिक्रमन्ते वशगा हि तस्य।
प्रीतिं परां प्राप्स्यसि तां तथैव
पुत्रस्तु ते प्राप्स्यति यौवराज्यम्॥ १७॥

इस त्रिलोकी का निर्माण और उसके सञ्चालन का विधान परमात्मा द्वारा निर्मित है। उसके वशवर्ती होने के नाते कोई इसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। अधिकारी होने के नाते तुम्हारा पुत्र युवराजपद प्राप्त करेगा और तुम पहले की भाँति सुख एवं शान्ति प्राप्त करोगी।

आश्वासिता तेन तु राघवेण
प्रभावयुक्तेन परन्तपेन।
सा वीरपत्नी ध्वनता मुखेन
सुवेषरूपा विरराम तारा॥ १८॥

प्रभावशाली और शत्रुतापी महात्मा राम ने जब तारा को इस प्रकार समझाया तब उत्तम वस्त्र-धारिणी वीर-पत्नी तारा ने रोना बन्द कर दिया और उसका मुखमण्डल प्रसन्न हो गया।

एकोनविंशः सर्गः (१९)

बाली की अन्त्येष्टि—

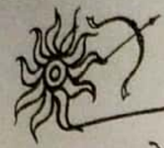
सुग्रीवं चैव तारां च साङ्गदां सहलक्ष्मणः।
समानशोकः काकुत्स्थः सान्त्वयन्निदमब्रवीत्॥ १॥

लक्ष्मण सहित श्रीराम ने जो उस समय सुग्रीव, तारा और अङ्गद के समान स्वयं भी दुःखी हो रहे थे, सुग्रीव, तारा और अङ्गद को सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा—

न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः।
यदत्रानन्तरं कार्यं तत्समाधातुमर्हथ॥ २॥

शोक-सन्ताप करने से दिवङ्गत आत्मा का कल्याण नहीं होता, इसलिए अब आगे जो कार्य करना है वह आप लोगों को करना चाहिए।

वचनान्ते तु रामस्य लक्ष्मणः परवीरहा।
अवदत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम्॥ ३॥



श्रीराम के ऐसा कह चुकने पर शत्रुघाती लक्ष्मण नम्रतापूर्वक खिन्नचित्त सुग्रीव से बोले—

कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम्।
ताराङ्गदाभ्यां सहितो बालिनो दहनं प्रति॥ ४॥

हे सुग्रीव! अब तुम तारा और अङ्गद को साथ लेकर बाली के दाहकर्म सम्बन्धी अन्त्येष्टि-कृत्य करो।

समाज्ञापय काष्ठानि शुष्काणि च बहूनि च।
चन्दनादीनि दिव्यानि बालिसंस्कारकारणात्॥ ५॥

बाली के अन्त्येष्टि-संस्कार के लिए दिव्य चन्दन और बहुत-सी सूखी लकड़ियाँ लाने के लिए नौकरों को आज्ञा दो।

समाश्वासय चैनं त्वमङ्गदं दीनचेतसम्।
मा भूर्बालिशबुद्धिस्त्वं त्वदधीनमिदं पुरम्॥ ६॥

इस समय तुम उदास एवं दीन अङ्गद को सान्त्वना दो। बालबुद्धि मत दिखाओ, क्योंकि इस समय यह सारी नगरी आपके अधीन है।

अङ्गदस्त्वानयेन्माल्यं वस्त्राणि विविधानि च।
घृतं तैलमथो गन्धान् यच्चात्र समनन्तरम्॥ ७॥

पुष्प-मालाएँ, विविध प्रकार के वस्त्र, घी, तेल सुगन्धित पदार्थ और अन्य जो-जो वस्तुएँ अपेक्षित हैं उन्हें अङ्गद जाकर ले आए।

त्वं तार शिबिकां शीघ्रमादायागच्छ सम्भ्रमात्।
त्वरा गुणवती युक्ता ह्यस्मिन्काले विशेषतः॥ ८॥

हे तार[1]! तुम शीघ्र जाकर शिबिका=पालकी ले आओ। इस समय शीघ्रता की परमावश्यकता है। ऐसे कार्यों में शीघ्रता से ही लाभ है।

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा तारः सम्भ्रान्तमानसः।
प्रविवेश गुहां शीघ्रं शिबिकासक्तमानसः॥ ९॥

लक्ष्मण के आदेश को सुनकर उद्विग्नचित्त तार पालकी लाने के लिए तुरन्त किष्किन्धा नगरी को गया।

आदाय शिबिकां तारः स तु पर्यापतत्पुनः।
वानरैरुह्यमानां तां शूरैरुद्वहनोचितैः॥ १०॥

पालकी को उठाने में समर्थ वीर वानरों के कन्धे पर पालकी को रखवा कर तार पुनः उसी स्थान पर लौट आया जहाँ श्रीराम थे।

दिव्यां भद्रासनयुतां शिबिकां स्यन्दनोपमाम्।
पक्षिकर्मभिराचित्रां द्रुमकर्मविभूषिताम्॥ ११॥

यह पालकी अत्यन्त सुन्दर थी। उसमें बैठने के लिए भद्रपीठ=उत्तम आसन बना हुआ था। वह रथ के समान शोभायमान थी, उसके भीतर और बाहर नाना प्रकार के पक्षियों और वृक्षों के चित्र चित्रित थे।

आचितां चित्रपत्तीभिः सुनिविष्टां समन्ततः।
विमानमिव सिद्धानां जालवातायनान्वितम्॥ १२॥

वह शिबिका पदाति सैनिकों के चित्रों से सुभूषित थी। वह सब ओर से भली प्रकार अलंकृत थी। वह सिद्धों के विमान की भाँति अति रमणीय थी। उसमें जालीदार झरोखे बने हुए थे।

सुनियुक्तां विशालां च सुकृतां शिल्पिभिः कृताम्।
दारुपर्वतकोपेतां चारुकर्मपरिष्कृताम्॥ १३॥

वह अत्यन्त दृढ़ और पर्याप्त लम्बी-चौड़ी थी। कुशल कारीगरों ने उसका सुन्दरता से निर्माण किया था। उसमें लकड़ी का एक क्रीड़ा पर्वत भी बना हुआ था और मीनाकारी के सुन्दर कामों से वह अलंकृत थी।

वराभरणहारैश्च चित्रमाल्योपशोभिताम्।
गुहागहनसंछन्नां रक्तचन्दनभूषिताम्॥ १४॥

वह पालकी मूल्यवान् आभूषणों और हारों से सुभूषित थी। चित्र-विचित्र फूलमालाओं से वह समलंकृत थी। उसकी छत पर वन और कन्दराओं के चित्र अङ्कित थे। वह लाल चन्दन के काम से भूषित थी।

---

१. सुग्रीव के सचिव का नाम है।



ईदृशीं शिबिकां दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
क्षिप्रं विनीयतां बाली प्रेतकार्यं विधीयताम्॥ १५॥

इस प्रकार की शिबिका[१] को देखकर श्रीराम ने लक्ष्मणजी से कहा—बाली को शीघ्र इस पालकी में स्थापित करो और इनका अन्त्येष्टि-संस्कार करो।

ततो बालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिबिकां तदा।
आरोपयत विक्रोशन्नङ्गदेन सहैव तु॥ १६॥

राम के ऐसा कहने पर अङ्गद और सुग्रीव दोनों ने रोते हुए बाली के शव को उठाकर शिबिका में रखा।

आरोप्य शिबिकां चैव बालिनं गतजीवितम्।
अलङ्कारैश्च विविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्च भूषितम्॥ १७॥

प्राणरहित बाली के शव को पालकी में रखकर उसे उत्तम पुष्पहारों, वस्त्रों एवं आभूषणों से अलंकृत किया गया।

आज्ञापयत्तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः।
और्ध्वदैहिकमार्यस्य[२] क्रियतामनुरूपतः॥ १८॥

तत्पश्चात् कपिराज सुग्रीव ने आदेश दिया कि मेरे बड़े भाई आर्य बाली का अन्त्येष्टि-संस्कार उनके अनुरूप राजकीय मान-सम्मान से किया जाये।

विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहून्यपि।
अग्रतः प्लवगा यान्तु शिबिका समनन्तरम्॥ १९॥

नाना प्रकार के रत्नों की राशि लुटाते हुए वानर वीर आगे-आगे चलें और उनके पीछे अरथी की पालकी चले।

अङ्गदं परिगृह्याशु तारप्रभृतयस्तदा।
क्रोशन्तः प्रययुः सर्वे वानरा हतबान्धवाः॥ २०॥

सुग्रीव के ऐसा आदेश देने पर अपने प्रिय बन्धु बाली की मृत्यु से विकल तार आदि समस्त वानर अङ्गद को साथ लेकर रोते हुए चल पड़े।

पुलिने गिरिनद्यास्तु विविक्ते जलसंवृते।
चितां चक्रुः सुबहवो वानराः शोककर्शिताः॥ २१॥

जलवाली पर्वतीय नदी के एकान्त और निर्जन तट पर पहुँचकर बहुत-से शोकविह्वल वानरों ने चिता बनाकर तैयार की।

सुग्रीवेण ततः सार्धमङ्गदः पितरं रुदन्।
चितामारोपयामास शोकेनाभिहतेन्द्रियः॥ २२॥

चिता तैयार हो जाने पर शोक से शिथिल इन्द्रियोंवाले, रोते हुए अङ्गद ने सुग्रीव के साथ अपने पिता बाली को उठाकर चिता पर रखा।

पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः।
ततोऽग्निं विधिवद्दत्त्वा सोऽपसव्यं चकार ह॥ २३॥

उस समय पिता को महायात्रा के लिए प्रस्थान करते हुए देखकर अंगद बहुत विकल हुआ। पश्चात् बाईं ओर से चिता की प्रदक्षिणा कर उसने विधिवत् चिता में अग्नि लगाई।

संस्कृत्य बालिनं ते तु विधिपूर्वं प्लवङ्गमाः।
आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शीतजलां शुभाम्॥ २४॥

इस प्रकार विधिपूर्वक बाली का अन्त्येष्टि-संस्कार कर वे सब वानर वीर अन्त्येष्टि-संस्कार के पश्चात् स्नान आदि करने के लिए शीतल जलवाली नदी के तट पर आये।

ततस्ते सहितास्तत्र ह्यङ्गदं स्थाप्य चाग्रतः।
सुग्रीवतारासहिताः सिषिचुर्वानरा जलम्॥ २५॥

---

१. ११ व १४ तक चार श्लोकों में जैसी सुन्दर पालकी का वर्णन है क्या ऐसी पालकी जंगली बन्दरों के पास हो सकती है? कभी नहीं। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि वाल्मीकीय रामायण में जिन वानरों का वर्णन है वह आजकल के पूँछवाले बन्दरों का नहीं है। रामायण काल में यक्ष, वानर, भालू, राक्षस आदि विभिन्न जातियाँ थीं। कला-कौशल में वानरजाति बहुत बढ़-चढ़ कर थी, यह बात आगे भी अनेक प्रकरणों में आयेगी।

२. यहाँ बाली के लिए 'आर्य' विशेषण दिया है। इससे भी यह सिद्ध है कि बाली आदि पुच्छ-विशिष्ट वानर नहीं थे।

तत्पश्चात् सुग्रीव तथा तारासहित उन सब वानरों ने इकट्ठे मिलकर और अङ्गद को आगे रखकर नदी-जल में स्नान किया।

सुग्रीवेणैव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः।
समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत्॥ २६॥

महाबली श्रीराम ने सुग्रीव के ही समान शोकाकुल और उदास हो बाली का अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पूर्ण कराया।

➤ विंशः सर्गः ➤ (२०)

सुग्रीव का राज्याभिषेक—

ततः काञ्चनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः॥ १॥

बाली के अन्त्येष्टि आदि कृत्यों के पश्चात् सुवर्ण पर्वत के समान कान्तिवाले और तरुण आदित्य के समान देदीप्यमान मुखवाले पवन-सुत हनुमान् हाथ जोड़कर श्रीराम से बोले—

भवत्प्रसादात्सुग्रीवः पितृपैतामहं महत्।
वानराणां सुदुष्प्रापं प्राप्तं राज्यमिदं प्रभो॥ २॥

हे स्वामिन्! पिता-पितामह द्वारा शासित वानरों का यह दुष्प्राप्य राज्य आपकी कृपा से ही सुग्रीव को प्राप्त हुआ है।

भवता समनुज्ञातः प्रविश्य नगरं शुभम्।
संविधास्यति कार्याणि सर्वाणि सुहृद्गुणः॥ ३॥

हे प्रभो! अब यह आपकी आज्ञा पाकर श्रेष्ठ नगर किष्किन्धा में प्रवेश कर अपने मित्रमण्डल के साथ सम्पूर्ण राज्य-कार्यों का विधिवत् सम्पादन करेंगे।

स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथाविधि।
अर्चयिष्यति रत्नैश्च माल्यैश्च त्वां विशेषतः॥ ४॥

वहाँ अनेक प्रकार के सुगन्धित ओषधियों से युक्त जल से विधिपूर्वक स्नान करके ये नाना प्रकार के रत्न तथा मालाओं से आपका विशेष रूप से सत्कार करेंगे।

इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुमितोऽर्हसि।
कुरुष्व स्वामिसम्बन्धं वानरान् सम्प्रहर्षयन्॥ ५॥

अतः आप कृपाकर इस रमणीय किष्किन्धा पुरी में पधारिए और सुग्रीव को इस प्रदेश का राजा बनाकर सम्पूर्ण वानरजाति को प्रसन्न कीजिए।

एवमुक्तो हनुमता राघवः परवीरहा।
प्रत्युवाच हनूमन्तं बुद्धिमान्वाक्यकोविदः॥ ६॥

हनुमान् के ऐसा कहने पर शत्रुहन्ता, बुद्धिमान्, एवं वाक्यविशारद श्रीराम उनसे बोले—

चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम्।
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन् पितुर्निर्देशपालकः॥ ७॥

हे सौम्य हनुमन्! मैं पिताजी कि आज्ञा का पालन करने के लिए चौदह वर्ष तक ग्राम अथवा नगर में प्रवेश नहीं करूँगा।

सुसमृद्धां गुहां रम्यां सुग्रीवो वानरर्षभः।
प्रविष्टो विधिवद्वीरः क्षिप्रं राज्येऽभिषिच्यताम्॥ ८॥

वानरश्रेष्ठ सुग्रीव उस समृद्धिशालिनी सुन्दर नगरी में प्रविष्ट हों और आप सब लोग शीघ्र ही विधिपूर्वक उस वीर को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त करो।

एवमुक्त्वा हुनमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत्।
वृत्तज्ञो वृत्तसम्पन्नमुदारबलविक्रमम्॥ ९॥
इममप्यङ्गदं वीर यौवराज्येऽभिषेचय।
अङ्गदोऽयमदीनात्मा यौवराज्यस्य भाजनम्॥ १०॥

श्रीराम हनुमान् से ऐसा कहकर फिर सुग्रीव से बोले—हे वीर! देखो, आप व्यवहारकुशल हो, अतः आप सदाचार-सम्पन्न, उदार-वृत्ति, बली एवं पराक्रमी इस अंगद को युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिए।



यह अंगद अत्यधिक उत्साही है (और तुम्हारे बड़े भाई का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण) युवराज पद का अधिकारी भी है।

पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः।
प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिकाः॥ ११॥

हे सौम्य! यह वर्षाकाल का चौमासा उपस्थित हो गया है। उसका प्रबल वर्षावाला यह प्रथम श्रावण मास चल रहा है।

नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम्।
अस्मिन् वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः॥ १२॥

हे सौम्य! यह उद्योग का समय नहीं है (इस समय सीताजी की खोज नहीं हो सकती), अतः आप अपनी राजधानी किष्किन्धा पुरी में प्रवेश करें और मैं वर्षाकाल की समाप्ति तक लक्ष्मण-सहित इसी पर्वत पर वास करूँगा।

इयं गिरिगुहा रम्या विशालां युक्तमारुता।
प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला॥ १३॥

हे सौम्य! ऋष्यमूक पर्वत की यह कन्दरा अत्यन्त रमणीक, विशाल एवं हवादार है। इसके समीप ही पानी भी बहुत है और अनेक प्रकार के कमल के फूलों से युक्त जलाशय भी यहाँ हैं।

कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत।
एष नः समयः सौम्यः प्रविश त्वं स्वमालयम्॥ १४॥

जब कार्तिक मास आरम्भ हो तब तुम रावण-वध के लिए यत्नशील होना। हे सौम्य! यही हम लोगों का निश्चय है। अब तुम अपने निवास-स्थान पर जाओ।

इति रामाभ्यनुज्ञातः सुग्रीवो वानराधिपः।
प्रविवेशपुरीं रम्यां किष्किन्धां बालिपालिताम्॥ १५॥

श्रीराम की ऐसी आज्ञा पाकर वानरराज सुग्रीव ने बाली द्वारा संरक्षित रम्य किष्किन्धा पुरी में प्रवेश किया।

ततः प्रकृतयः सर्वाः सुग्रीवं वानरर्षभम्।
अभ्यषिञ्चन्त सुहृदः सहस्राक्षमिवामराः॥ १६॥

नगरी में प्रविष्ट होने पर समस्त प्रजा के लोगों और सुहृद्-जनों ने सुग्रीव का राज्याभिषेक इसी प्रकार किया जिस प्रकार देवता लोग इन्द्र का किया करते हैं।

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे सर्वे वानरपुङ्गवाः।
प्रचुक्रुशुर्महात्मानो हृष्टास्तत्र सहस्रशः॥ १७॥

जब सुग्रीव का राज्याभिषेक हो गया तब सहस्रों वानरश्रेष्ठ हर्षित हो आनन्द-ध्वनि करने लगे।

रामस्य तु वचः कुर्वन् सुग्रीवो हरिपुङ्गवः।
अङ्गदं सम्परिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत्॥ १८॥

तदनन्तर वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने राम के आदेश का पालन करते हुए अंगद का आलिंगन कर उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया।

अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवङ्गमाः।
साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानोऽभ्यपूजयन्॥ १९॥

अंगद के युवराज पद पर अभिषिक्त हो जाने पर दयार्द्रचित वानर 'साधु-साधु' (वाह-वाह) कहकर सुग्रीव का गौरव गान करने लगे।

रामं चैव महात्मानं लक्ष्मणं च पुनः पुनः।
प्रीताश्च तुष्टुवुः सर्वे तादृशे तत्र वर्तिनि॥ २०॥

अंगद के युवराज पद पर अभिषिक्त हो जाने पर सभी वानर-गुण प्रसन्न होकर इस कृत्य के प्रेरक और समर्थक राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों की बार-बार प्रशंसा करने लगे।

हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता।
बभूव नगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे॥ २१॥

हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से परिपूर्ण, ध्वजा और पताकाओं से अलंकृत और पर्वतों से घिरी हुई यह किष्किन्धा उस समय अत्यधिक शोभायमान हो रही थी।

➤ एकविंशः सर्गः ➤ (२१)

प्रस्त्रवण-गिरि पर निवास—

**अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम्।
आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्त्रवणं गिरिम्॥ १॥**

उधर सुग्रीव किष्किन्धा नगरी में प्रविष्ट हो गये और उनका राज्याभिषेक हो गया और इधर श्रीराम लक्ष्मणजी को अपने साथ लेकर प्रस्त्रवण पर्वत पर चले आये।

**तस्य शैलस्य शिखरे महतीमायतां गुहाम्।
प्रत्यगृह्णत वासार्थं रामः सौमित्रिणा सह॥ २॥**

उस पर्वत की चोटी पर एक विशाल कन्दरा को श्रीराम ने लक्ष्मण-सहित निवास के लिए पसन्द किया।

**इतश्च नातिदूरे सा किष्किन्धा चित्रकानना।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या भविष्यति नृपात्मज॥ ३॥
इत्युक्त्वा न्यवसत्तत्र राघवः सहलक्ष्मणः।
बहुदृश्यदरीकुञ्जे तस्मिन् प्रस्त्रवणे गिरौ॥ ४॥**

हे राजकुमार! चित्रविचित्र वन-पंक्तियों से अलंकृत सुग्रीव की रमणीय नगरी किष्किन्धा भी यहां से बहुत दूर नहीं है। ऐसा कहकर लक्ष्मण सहित श्रीराम उस अत्यन्त मनोहर कन्दराओं वाले, अनेक दृश्यों से युक्त एवं लता-वृक्षों से वेष्टित प्रस्त्रवण पर्वत पर रहने लगे।

**सुसुखेऽपि बहुद्रव्ये तस्मिन् हि धरणीधरे।
वसतस्तस्य रामस्य रतिरल्पाऽपि नाभवत्॥ ५॥**

यद्यपि उस पर्वत पर नाना प्रकार के आवश्यक, सुखावह द्रव्य और बहुत-से पुष्प-फलादि थे तथापि वहाँ निवास करते हुए श्रीराम को थोड़ी भी शान्ति प्राप्त नहीं हुई।

**हृतां हि भार्यां स्मरतः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्।
आविवेश न तं निद्रा निशासु शयनं गतम्॥ ६॥**

क्योंकि जब वे प्राणों से भी प्रिय और हरण की गई सीता का स्मरण करते, तब रात्रि में शय्या पर लेटने पर भी उन्हें निद्रा नहीं आती थी।

**तं शोचमानं काकुत्स्थं नित्यं शोकपरायणम्।
तुल्यदुःखोऽब्रवीद्भ्राता लक्ष्मणोऽनुनयन्वचः॥ ७॥**

सदैव शोकाक्रान्त श्रीराम को शोक से व्याकुल देखकर उन्हीं की भाँति शोकाकुल लक्ष्मणजी ने श्रीराम से नम्रतापूर्वक ये वचन कहे—

**अलं वीर व्यथां गत्वा न त्वं शोचितुमर्हसि।
शोचतो व्यवसीदन्ति सर्वार्था विदितं हि ते॥ ८॥**

हे वीर! आप व्यथित होकर शोकाकुल न हों क्योंकि आप यह भली-भाँति जानते हैं कि शोक करने वाले लोग सदा कष्ट ही उठाया करते हैं।

**समुन्मूलय शोकं त्वं व्यवसायं स्थिरं कुरु।
ततः सपरिवारं तं निर्मूलं कुरु राक्षसम्॥ ९॥**

आप शोक का पूर्णरूपेण उन्मूलन कर उद्योग करने का दृढ़ निश्चय कीजिए, तभी आप उस दुर्दान्त राक्षस रावण का परिवार सहित समूल नाश कर सकेंगे।

**लक्ष्मणस्य तु तद्वाक्यं प्रतिपूज्य हितं शुभम्।
राघवः सुहृदं स्निग्धमिदं वचनमब्रवीत्॥ १०॥**

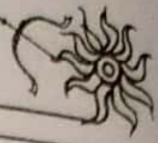
लक्ष्मणजी के हितकारी और मङ्गलमय इन विचारों का आदर करते हुए श्रीराम अपने हितैषी बन्धु लक्ष्मण से यह स्नेहपूर्ण वचन बोले—

**एष शोकः परित्यक्तः सर्वकार्यावसादकः।
विक्रमेष्वप्रतिहतं तेजः प्रोत्साहयाम्यहम्॥ ११॥**

हे लक्ष्मण! यह लो, मैंने सभी कार्यों को नष्ट करने वाले शोक को तिलाञ्जलि दे दी, अब मैं अपने पराक्रम सम्बन्ध दुर्धर्ष तेज को प्रोत्साहित करता हूं।

**शरत्कालं प्रतीक्षिष्ये स्थितोऽस्मि वचने तव।
सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन्॥ १२॥**

हे लक्ष्मण! तुम्हारी बात मानकर मैं सुग्रीव की सहायता और नदियों की अनुकूलता प्राप्त करने के लिए शरत्काल की प्रतीक्षा करूँगा।



◀ द्वाविंशः सर्गः ▶ (२२)

वर्षा-ऋतु का वर्णन—

वसन्माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
अयं स कालः सम्प्राप्तः समयोऽद्य जलागमः॥ १॥

माल्यवान्[१] पर्वत पर निवास करते हुए एक दिन राम श्रीलक्ष्मणजी से कहने लगे—देखो, वर्षा का समय उपस्थित हो गया है।

नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्॥ २॥

सूर्य की किरणों द्वारा समुद्र के जल को पीता हुआ आकाश नौ मास का गर्भ धारण करता है। तत्पश्चात् वर्षाकाल में इस रसायन रूपी जल को पृथिवी पर बरसाता है।

एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता।
सीतेव शोकसन्तप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति॥ ३॥

धूप से तपकर कष्ट पाई हुई तथा वृष्टि के नूतन जल से सिञ्चित यह पृथिवी शोकसन्तप्त सीता के समान बाष्प त्याग कर रही है।

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः।
मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः॥ ४॥

काले-काले बादल ही जिनके मृगचर्म हैं, गिरती हुई जलधारा ही जिनका यज्ञोपवीत है और जिनकी कन्दराएँ वायु से पूरित हैं ऐसे ये पर्वत अध्ययन करनेवाले ब्रह्मचारी के समान प्रतीत हो रहे हैं।

नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति मा।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी॥ ५॥

नील मेघमाला में चमकती हुई यह विद्युत् ऐसी प्रतीत होती है मानो रावण की गोद में पड़ी हुई तपस्विनी सीता छटपटा रही है।

रजः प्रशान्तं स हिमोऽद्य वायु-
र्निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां
प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान्॥ ६॥

वर्षा के कारण धूल का उड़ना शान्त हो गया है, शीतल वायु बहने लगी है, ग्रीष्मकाल की उष्णता शान्त हो गई है, सम्राटों की विजय-यात्राएँ रुक गई हैं और प्रवासी लोग अपने-अपने देशों को लौट रहे हैं।

सम्प्रस्थिता मानसवासलुब्धाः
प्रियान्विताः सम्प्रति चक्रवाकाः।
अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषु
यानानि मार्गेषु न सम्पतन्ति॥ ७॥

मानसरोवर में रहनेवाले मानसरोवर-वास-लोभी राजहंस मानसरोवर के लिए चल दिये। चकवा अपनी प्यारी चकवी से मिल गया है और निरन्तर वर्षा के कारण जल से क्षत-विक्षत मार्ग रथों के गमनागमन के लिए अवरुद्ध हो गया है।

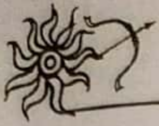
बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन
विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन।
गात्रानुवृत्तेन शुकप्रभेण
नारीव लाक्षोक्षितकम्बलेन॥ ८॥

वर्षाकाल में उत्पन्न होनेवाली छोटी-छोटी वीरबहूटियों से बीच-बीच में चित्रित नूतन घास से परिपूर्ण पृथिवी ऐसे शोभित हो रही है मानो किसी नारी ने लाक्षा रंग से चित्रित शुक के समान हरा कम्बल धारण किया हुआ हो।

जाता वनान्ताः शिखिसंप्रनृत्ता
जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः।
जाता वृषा गोषु समानकामा
जाता मही सस्यवनाभिरामा॥ ९॥

इस समय वन की भूमि मयूरों के नृत्य से परिपूर्ण

१. प्रस्रवण और माल्यवान्—ये दोनों एक ही पर्वत के नाम प्रतीत होते हैं।



हो रही है। कदम्ब के वृक्ष पुष्प-गुच्छों से लद गये हैं, वृषभ गौओं के समान काम-पीड़ित हो रहे हैं और सम्पूर्ण पृथिवी हरी-हरी घास से अत्यन्त रमणीय दिखाई दे रही है।

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः[1] ॥ १० ॥

इस समय नदियाँ जल से परिपूर्ण होकर बह रही हैं, बादल वर्षा कर रहे हैं, मदमस्त गजराज गर्ज रहे हैं, वन प्रदेश अत्यन्त शोभित हो रहे हैं, स्त्री से वियुक्त लोग अपनी प्रिया का ध्यान कर रहे हैं, मयूर नाच रहे हैं और वानरगण (फलों के लिए) आशावान् हो रहे हैं।

क्वचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः
क्वचित्प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः।
क्वचित्प्रमत्ता इव वारणेन्द्रै-
र्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ॥ ११ ॥

ये वन प्रदेश, जिनमें कहीं भ्रमर-पंक्तियाँ गुञ्जार कर रही हैं, कहीं मोरों का नृत्य हो रहा है, कहीं मतवाले हाथियों का गर्जन हो रहा है—नाना प्रकार के कौतुकों से परिपूर्ण होने के कारण कैसे सुन्दर दीख पड़ते हैं।

षट्पादतन्त्रीमधुराभिधानं
प्लवङ्गमोदीरितकण्ठतालम्।
आविष्कृतं मेघमृदङ्गनादैर्
वनेषु सङ्गीतमिव प्रवृत्तम्॥ १२ ॥

भौंरों की गुञ्जार मानो वीणा की मधुर झंकार है, मेंढकों की टर्र-टर्र मानो कण्ठ से दिया हआ ताल है और मेघों की गड़-गड़ाहट मानो मृदंग से निकली हुई गमक है—इन सब शब्दों से मानो उस वन में संगीत हो रहा है।

मत्ता गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्रा
वनेषु विक्रान्ततरा मृगेन्द्राः।
रम्य नगेन्द्रा निभृता नरेन्द्राः
प्रक्रीडितो वारिधरैः सुरेन्द्रः ॥ १३ ॥

इस समय गजेन्द्र मदमत्त हैं, वृषभ अति प्रसन्न हैं, वनों में सिंह अत्यन्त पराक्रम-युक्त हैं, हरियाली से पर्वत अत्यन्त रमणीक हो गये हैं, राजा लोग विजय यात्रा से निवृत्त हो गये हैं और सुरपति इन्द्र मेघों द्वारा क्रीड़ा कर रहे हैं।

वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणां सेना प्रतिनिवर्तते।
वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः ॥ १४ ॥

इस वर्षाकाल में राजाओं की विजय-यात्राएँ स्थगित हो गई हैं, अतः आगे गई हुई सेनाएँ वापस लौट पड़ी हैं। जल ने राजाओं के वैर को शान्त और मार्ग को अवरुद्ध कर दिया है।

मासि प्रौष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम्।
अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः ॥ १५ ॥

वेद का स्वाध्याय करने की इच्छा करनेवाले सामवेदी ब्राह्मणों के अध्ययन का काल यह भाद्रमास[2] प्रारम्भ हो गया है।

निवृत्तकर्मायतनो नूनं सञ्चितसंचयः।
आषाढीमभ्युपगतो भरतः कोसलाधिपः ॥ १६ ॥

---

१. श्लोक के प्रथम दो चरणों में केवल क्रियाएं हैं और अन्तिम दो चरणों में कर्ता। एक-एक क्रिया का सम्बन्ध क्रमशः एक-एक कर्ता के साथ है जैसे '**नद्यो वहन्ति**'—नदियाँ बह रही हैं। यह श्लोक क्रमालंकार का सुन्दर उदाहरण है।

२. यहाँ '**श्रावणी-उपाकर्म**' पर्व का आभास झलकता है। यह पर्व इतना ही प्राचीन है जितना वेद। वेद में इस पर्व का संकेत निम्न मन्त्र में दिखाई देता है—

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वतां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥
—ऋ० ७।१०३।१

ब्राह्मण लोग वर्ष भर तक यज्ञ-याग और वेद-प्रचार कार्य में संलग्न होने के कारण सोये हुए से रहते हैं, उन्हें अपने स्वाध्याय के लिए समय नहीं मिलता। जिस समय



गुह आदि आच्छादन कर्म को समाप्त कर और वर्षाकाल के लिए आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कर कोसलाधिपति भाई भरत ने भी आषाढ़ी की 'पूर्णमासी से किसी व्रत का अनुष्ठान आरम्भ किया होगा।

इमाः स्फीतगुणा वर्षाः सुग्रीवः सुखमश्नुते।
विजितारिः सदारश्च राज्ये महति च स्थितः॥ १७॥

यह वर्षा ऋतु अनेक गुणों से परिपूर्ण है, इस समय सुग्रीव भी सुख अनुभव कर रहा है, क्योंकि उसने शत्रु पर विजय प्राप्त कर ली है। उनकी स्त्री भी उन्हें मिल गई है और एक महान् राज्य भी उन्हें प्राप्त हो गया है।

अहं तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्च्युतः।
नदीकूलमिव क्लिन्नमवसीदामि लक्ष्मण॥ १८॥

परन्तु हे लक्ष्मण! मेरी भार्या हर ली गई है, विशाल राज्य से मैं वञ्चित हो गया हूँ, अतः धार से कटते हुए नदी-तट के समान इस समय में अत्यन्त दुःखी हो रहा हूँ।

शोकश्च मम विस्तीर्णो वर्षाश्च भृशदुर्गमाः।
रावणश्च महाञ्शत्रुरपारं प्रतिभाति मे॥ १९॥

मेरा शोक उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, वर्षा ऋतु को हटा नहीं सकते और महान् शत्रु रावण से पाला पड़ गया है, अतः मेरे दुःख तथा शोक का समुद्र अगाध प्रतीत हो रहा है।

अयात्रां चैव दृष्ट्वेमां मार्गांश्च भृशदुर्गमान्।
प्रणते चैव सुग्रीवे न मया किञ्चिदीरितम्॥ २०॥

वर्षा के कारण मार्गों की दुर्गमता को देख और इस काल को यात्रा के अनुकूल न समझकर ही मैंने जिस समय सुग्रीव प्रणाम कर जाने लगा था, इस विषय में कुछ भी नहीं कहा था।

स्वयमेव हि विश्रम्य ज्ञात्वा कालमुपागतम्।
उपकारं च सुग्रीवो वेत्स्यते नात्र संशयः॥ २१॥

विश्राम के पश्चात् सीता के अन्वेषण का समय उपस्थित होने पर सुग्रीव स्वयं आ जायेंगे। सुग्रीव अपने प्रति किये हुए उपकार का स्मरण रखेंगे इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।

तस्मात्कालप्रतीक्षोऽहं स्थितोऽस्मि शुभलक्षण।
सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन्॥ २२॥

हे शुभ लक्षणों से युक्त लक्ष्मण! मैं सुग्रीव की कृपा और नदियों की गमनीयता की प्रतीक्षा करता हुआ वर्षा-समाप्ति तक ठहरा हुआ हूँ।

उपकारेण वीरो हि प्रतिकारेण युज्यते।
अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्त्ववतां मनः॥ २३॥

वीर लोग उपकार का बदला अवश्य ही प्रत्युपकार से देते हैं। जो कृतघ्न हो जाते हैं और प्रत्युपकार नहीं

आकाश में मेघमण्डल छा जाते हैं, उस समय इन कठोर व्रतचारी ब्राह्मणों के जीवन में भी नव-ज्योति, नव-चेतना एवं नव-स्फूर्ति का सञ्चार हो जाता है। जिस प्रकार वर्षा के आगमन पर मेंढक प्रसन्न होते हैं इसी प्रकार '**मण्डूकाः**' मननशील ब्राह्मण भी हर्षित होकर इस वर्षा ऋतु में वेदवाणी का विशेषरूप से अध्ययन करते हैं। इस ऋतु में स्वाध्याय की कमी को पूरा कर वे अपने-आपको अगले वर्ष के लिए अधिक योग्य बनाते हैं।

मनुस्मृति से भी इस बात की पुष्टि होती है—

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपञ्चमान्॥
पुष्ये तु च्छन्दसां कुर्याद् बहिरुत्सर्जनं द्विजः।
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि॥

—मनु० ४।९५, ९६

द्विज श्रावणी अथवा भाद्रपद=भादों की पूर्णिमा को उपाकर्म=आरम्भ करके साढ़े चार मास तक वेदों का दत्तचित्त होकर स्वाध्याय करे।

पुष्य नक्षत्रवाली पूर्णिमा (पौषी) में अथवा माघशुक्ल के प्रथम दिन के पूर्वाह्ण में ग्राम के बाहर जाकर वेद का उत्सर्जन (समाप्ति-कर्म) करे।



करते उनसे उपकार करनेवाले का मन फट जाता है।

तेनैवमुक्तः प्रणिधाय लक्ष्मणः
उवाच रामं स्वभिरामदर्शनम्।
यथोक्तमेतत्तव सर्वमीप्सितं
नरेन्द्र कर्ता न चिराद्धरीश्वरः ॥ २४॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मणजी उनके कथन का सम्मान करते हुए बोले—हे नरेन्द्र! आपने जैसा कहा है वानरराज सुग्रीव शीघ्र वैसा ही करेंगे।

➤ त्रयोविंशः सर्गः ➤ (२३)

हनुमान् का प्रतिबोधन—

समीक्ष्य विमलं व्योम गतिविद्युद्बलाहकम्।
हरीश्वरमुपागम्य हनुमान् वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

बादलों की गड़गड़ाहट और विद्युत् की कड़क से रहित विमल आकाश को देखकर हनुमान् वानरराज सुग्रीव के पास जाकर बोले—

राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरपि वर्धिता।
मित्राणां संग्रहः शेषस्तं भवान् कर्तुमर्हति॥ २॥

हे कपिराज! आपने राज्य एवं यश प्राप्त किया है और कुल-परम्परा से आई हुई लक्ष्मी को भी आपने बढ़ाया है, अब आपको उचित है कि अपने मित्र का जो कार्य करना शेष है, उसे आप पूर्ण करें।

यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते।
तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चाभिवर्धते॥ ३॥

समय को जाननेवाला जो पुरुष अपने मित्रों के साथ उत्तम व्यवहार करता है उसका राज्य, यश और प्रताप उत्तरोत्तर बढ़ता है।

यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिप।
समवेतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते॥ ४॥

हे पृथिवीनाथ! जिसका कोश, सेना, मित्र और आत्मा पर समान रूप से प्रेम रहता है वह महान् राज्य का उपभोग करता है।

तद्भवान् वृत्तसम्पन्नः स्थितः पथि निरत्यये।
मित्रार्थमभिनीतार्थं यथावत्कर्तुमर्हति॥ ५॥

आप सदाचार-सम्पन्न हैं और सन्मार्ग पर आरूढ़ हैं, अतः आपको मित्र के प्रतिज्ञात कार्य को भली प्रकार सम्पन्न करना चाहिए।

सन्त्यज्य सर्वकर्माणि मित्रार्थे यो न वर्तते।
सम्भ्रमाद्धि कृतोत्साहः सोऽनर्थेनावरुध्यते॥ ६॥

जो मनुष्य अपने सम्पूर्ण कामों को छोड़कर मित्र के कार्य का सम्पादन नहीं करता, अपितु मोह में फँसने के कारण अन्य कार्यों में विशेष उत्साह दिखाता है वह अनर्थ में फँस जाता है।

यस्तु कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते।
स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते॥ ७॥

जो व्यक्ति समय के व्यतीत हो जाने पर मित्र के कार्य में प्रवृत्त होता है, वह सिरतोड़ परिश्रम करने पर भी मित्र के कार्य को पूर्ण नहीं कर सकता।

यदिदं वीर कार्यं नो मित्रकार्यमरिन्दम।
क्रियतां राघवस्यैतद्वैदेह्याः परिमार्गणम्॥ ८॥

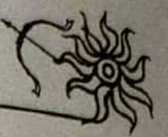
हे रिपुदमन! मित्र-कार्य का समय अब बीता ही चाहता है, अतः आप सीता के अन्वेषणरूपी राम के कार्य को आरम्भ कर दीजिए।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा काले साधु निवेदितम्।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नश्चकार मतिमुत्तमाम्॥ ९॥

हनुमान्‌जी के समयोचित और उत्तमरूप से कहे हुए वचनों को सुनकर बल-बुद्धि-सम्पन्न कपिराज सुग्रीव ने राम-कार्य को शीघ्र ही कर डालने का निश्चय किया।

स संदिदेशाभिमतं नीलं नित्यकृतोद्यमम्।
दिक्षु सर्वासु सर्वेषां सैन्यानामुपसंग्रहे॥ १०॥

महाराज सुग्रीव ने निरन्तर उद्योग में संलग्न



रहनेवाले नील नामक सेनापति को सम्पूर्ण दिशाओं से सैन्य-संग्रह करने का आदेश दिया।

हरींश्च वृद्धानुपयातु साङ्गदो
भवान् ममाज्ञामधिकृत्य निश्चिताम्।
इति व्यवस्थां, हरिपुङ्गवेश्वरो
विधाय वेश्म प्रविवेश वीर्यवान्॥ ११॥

हे नील! मेरी आज्ञा से अंगद को अपने साथ लेकर हमारे अधीन जो बड़े-बूढ़े वानर हैं उनके पास स्वयं जाओ। कपिप्रवर, पराक्रमी सुग्रीव इस प्रकार की व्यवस्था कर राजभवन में चले गये।

चतुर्विंशः सर्गः (२४)

शरद्-ऋतु-वर्णन—

दृष्ट्वा च विमलं व्योम विमुक्ते गगने घनैः।
उवाच लक्ष्मणं रामो मैथिलीमनु चिन्तयन्॥ १॥

मेघों से रहित विमल आकाश को देखकर कमलनयनी सीता का स्मरण करते हुए श्रीराम लक्ष्मणजी से बोले—

तर्पयित्वा सहस्राक्षः सलिलेन वसुन्धराम्।
निर्वर्तयित्वा सस्यानि कृतकर्मा व्यवस्थितः॥ २॥

हे लक्ष्मण! देखो, इन्द्र ने अपने जल से सम्पूर्ण पृथिवी को तृप्त कर और अन्न को पकाकर अपना सब कार्य पूरा कर दिया है।

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः।
विसृज्य सलिलं मेघाः परिश्रान्ता नृपात्मज॥ ३॥

हे राजकुमार लक्ष्मण! गम्भीर गर्जन करनेवाले मेघ भी पर्वतों, वृक्षों और नगरों पर जल की वृष्टि कर अब शान्त हो गये हैं।

नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृतो दिशो दश।
विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः॥ ४॥

नील कमल के पत्ते की भाँति श्याम वर्ण मेघ दशों दिशाओं को हरियाली से परिपूर्ण कर मदहीन हाथियों की भाँति शान्त हो गये हैं।

घनानां वारणानां च मयूराणां च लक्ष्मण।
नादः प्रस्रवणानां च प्रशान्तः सहसाऽनघ॥ ५॥

हे निष्पाप लक्ष्मण! अब बादलों की गड़गड़ाहट, हाथियों की चिंघाड़, मयूरों की कूक और झरनों का कल-कल नाद भी शान्त हो गया है।

मदप्रगल्भेषु च वारणेषु
गवां समूहेषु च दर्पितेषु।
प्रसन्नतोयासु च निम्नगासु
श्रियं विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता॥ ६॥

देखो, यह शरत्कालीन शोभा मतवाले हाथियों की पंक्ति में, उन्मत्त साँड़ों के झुण्ड में और निर्मल जलवाली नदियों में अनेक प्रकार से विभक्त होकर अत्यन्त सुशोभित हो रही है।

व्यभ्रं नभः शस्त्रविधौतवर्णं
कृशप्रवाहानि नदीजलानि।
कह्लारशीताः पवनाः प्रवान्ति
तमो विमुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः॥ ७॥

शस्त्र=तलवार के वर्ण की भाँति आकाश-मण्डल चमचमा रहा है। नदियों का जल अल्प हो गया है और उनका प्रवाह मन्द पड़ गया है, कमल के फूलों की गन्ध से सुवासित शीतल वायु बह रही है। समस्त दिशाएँ अन्धकार से रहित होकर प्रकाशित हो रही हैं।

सूर्यातपक्रामणनष्टपङ्का
भूमिः समुत्पादितसान्द्ररेणुः।
अन्योन्यवैरामर्षायुताना—
मुद्योगकालोऽद्य नराधिपानाम्॥ ८॥



सूर्य की प्रचण्ड गर्मी से कीचड़ सूखकर नष्ट हो गई है, भूमि ने घनी धूल को उत्पन्न कर दिया है। परस्पर वैर रखनेवाले राजाओं का उद्योग समय[१] आ गया है।

जलं प्रसन्नं कुमुदं प्रभासं
क्रौञ्चस्वनः शालिवनं विपक्वम्।
मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः
शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम्॥ ९॥

जल निर्मल हो गया है, कमल खिल गये हैं, क्रौञ्चपक्षी का शब्द होने लगा है, खेतों में धान पक गये हैं, सेवन करने योग्य मनोरम वायु बह रहा है, बादलों से रहित चन्द्रमण्डल विमल हो गया है, इन सभी लक्षणों से वर्षाकाल की समाप्ति सूचित हो रही है।

अन्योन्यं बद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज।
उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः॥ १०॥

हे सौम्य! एक-दूसरे से वैर रखनेवाले विजय-अभिलाषी राजाओं की युद्ध-यात्रा के उद्योग का यही समय है।

इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज।
न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं वा तथाविधम्॥ ११॥

हे राजकुमार! विजय-अभिलाषी राजाओं के लिए यह यात्रा का प्रधान समय आ गया है, परन्तु मैं न तो सुग्रीव को देखता हूँ और न सीताजी के अन्वेषण के लिए कोई तैयारी ही देखता हूँ।

प्रियाविहने दुःखार्ते हृतराज्ये विवासिते।
कृपां न कुरुते राजा सुग्रीवो मयि लक्ष्मण॥ १२॥

हे लक्ष्मण! देखो, प्राणप्रिया से वियुक्त, अत्यन्त दुःखी, राज्य से च्युत और गृह से निर्वासित मेरे ऊपर सुग्रीव को दया नहीं आती।

स कालं परिसंख्याय सीतायाः परिमार्गणे।
कृतार्थः समयं कृत्वा दुर्मतिर्नावबुध्यते॥ १३॥

देखो, सुग्रीव ने सीता के अन्वेषण के लिए समय की अवधि तो निश्चित की थी, परन्तु इस समय स्वयं सफल मनोरथ होने के कारण वह दुर्मति सुग्रीव चेतता नहीं है।

स किष्किन्धां प्रविश्य त्वं ब्रूहि वानरपुङ्गवम्।
मूर्खं ग्राम्यसुखे सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम॥ १४॥

हे लक्ष्मण! तुम किष्किन्धा में जाओ ग्राम्य सुखों (भोग-विलास) में आसक्त मूर्ख कपिराज सुग्रीव को मेरी ओर से कहो—

अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम्।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः॥ १५॥

जो मनुष्य बल-पौरुष युक्त एवं पूर्व-उपकारी अर्थियों को प्रतिज्ञापूर्वक आश्वासन देकर उसे भंग करता है वह संसार में अधम पुरुष माना जाता है।

शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम्।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः॥ १६॥

इसके विपरीत जो वीर पुरुष भली अथवा बुरी जो भी प्रतिज्ञा कर ली उसे सत्यतापूर्वक निभाता है वह पुरुषोत्तम होता है।

कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते॥ १७॥

अपना मनोरथ सिद्ध हो जाने पर जो पुरुष अपने मित्र के कार्य को नहीं करते वे कृतघ्न होते हैं और ऐसे कृतघ्नों के मरने पर उनके मांस को मांसाहारी पक्षी भी नहीं खाते।

नूनं काञ्चनपृष्ठस्य विकृष्टस्य मया रणे।
द्रष्टुमिच्छति चापस्य रूपं विद्युद्गणोपमम्॥ १८॥

सुग्रीव से कहना कि तू क्या स्वर्ण की पीठवाले, विद्युत् के समान देदीप्यमान, चिल्ला चढ़ाये हुए मेरे धनुष को संग्राम-भूमि में देखना चाहता है।

न च सङ्कुचितः पन्था येन बाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः॥ १९॥

---

१. इस वर्णन से 'विजयादशमी' पर्व की सूचना ध्वनित होती है। वर्षा ऋतु के पश्चात् विजयादशमी के दिन राजा लोग सीमा-उल्लंघन किया करते थे और अपने शत्रुओं पर आक्रमण किया करते थे।



उससे यह भी कहना कि हे सुग्रीव! मरने के पश्चात् बाली जिस मार्ग से गया है वह मार्ग संकुचित=सकरा अथवा बन्द नहीं हो गया है, अतः अपनी प्रतिज्ञा का दृढ़तापूर्वक पालन करो, बाली के पथ का अनुसरण मत करो।

एक एव रणे बाली शरेण निहतो मया।
त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम्॥ २०॥

उससे यह भी कहना कि बाली को तो मैंने संग्राम में अपने बाण से अकेले को ही मारा था, परन्तु प्रतिज्ञा-भ्रष्ट तुम जैसे अनृतवादी को तो मैं बन्धु-बान्धवोंसहित मारूँगा।

तदेवं विहिते कार्ये यद्धितं पुरुषर्षभ।
तत्तद्ब्रूहि नरश्रेष्ठ त्वर कालव्यतिक्रमः॥ २१॥

हे नरश्रेष्ठ! इन बातों के अतिरिक्त कार्यसिद्धि के लिए जो-जो बातें तुम्हें हितकारी लगें वे सुग्रीव से कहो। अब तुम शीघ्र जाओ, समय न बीतने पाये।

◀ पञ्चविंशः सर्गः ▶ (२५)

क्रुद्ध लक्ष्मण का किष्किन्धा में पहुँचना और तारा का उसे शान्त करना—

अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा।
प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात्॥ १॥

शत्रुहन्ता वीर लक्ष्मण सुग्रीव के लिए श्रीराम का आदेश लेकर, उनकी आज्ञा से अत्यन्त रमणीक किष्किन्धा पुरी में प्रविष्ट हुए।

द्वारस्था हरयस्तत्र महाकाया महाबलाः।
बभूवुर्लक्ष्मणं दृष्ट्वा सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः॥ २॥

वहाँ द्वार पर खड़े हुए विशालकाय एवं महा बलवान् वानर लक्ष्मणजी को देखते ही हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

स तां रत्नमयीं श्रीमान्दिव्यां पुष्पितकाननाम्।
रम्यां रत्नसमाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम्॥ ३॥

श्रीमान् लक्ष्मण ने रत्नों से सुशोभित, दिव्य-पुष्पोंवाले उद्यानों से युक्त, अनेक उत्तम वस्तुओं से परिपूर्ण, विशाल एवं मनोहारी किष्किन्धा नगरी को देखा।

हर्म्यप्रासादसम्बाधां नानापण्योपशोभिताम्।
सर्वकालफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभिताम्॥ ४॥

वह नगरी विशाल राजमहलों से परिपूर्ण, देवगृहों=यज्ञशालाओं से युक्त, अनेक प्रकार के बाजारोंवाली, सब ऋतुओं में फल देनेवाले और पुष्पित वृक्षों से सुशोभित थी।

अङ्गदस्य गृहं रम्यं मैन्दस्य द्विविदस्य च।
गवयस्य गवाक्षस्य सूर्याक्षस्य हनुमतः॥ ५॥
एतेषां कपिमुख्यानां राजमार्गे महात्मनाम्।
ददर्श गृहमुख्यानि महासाराणि लक्ष्मणः॥ ६॥

उस नगरी में राजमार्ग के दोनों ओर लक्ष्मणजी ने अंगद, मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, सूर्याक्ष, हनुमान् आदि प्रधान वानरों के अति सुन्दर और दृढ़ भवनों को देखा।

पाण्डुराभ्रप्रकाशानि दिव्यमाल्ययुतानि च।
प्रभूतधनधान्यानि स्त्रीरत्नैः शोभितानि च॥ ७॥

वे भवन श्वेत मेघों के समान प्रकाशमान तथा गन्ध और मालाओं से सुभूषित थे। वे गृह धन-धान्य से परिपूर्ण और सुन्दर स्त्रियों से शोभित थे।

पाण्डुरेण तु सालेन परिक्षिप्तं दुरासदम्।
वानरेन्द्रगृहं रम्यं महेन्द्रसदनोपमम्॥ ८॥

(आगे चलकर लक्ष्मणजी ने) श्वेत पर्वतों से घिरे हुए, दुर्गमनीय और इन्द्र के प्रासाद के समान भव्य वानरेन्द्र सुग्रीव के गृह को देखा।

सुग्रीवस्य गृहं रम्यं प्रविवेश महाबलः।
अवार्यमाणः सौमित्रिर्महाभ्रमिव भास्करः॥ ९॥

लक्ष्मण ने वानरेन्द्र सुग्रीव के रमणीय राजमहल में बिना किसी रुकावट के ऐसे ही प्रवेश किया जैसे

महामेघ-माला में सूर्य प्रवेश करता है।

स सप्तकक्ष्या धर्मात्मा नानाजनसमाकुलाः।
प्रविश्य सुमहद्गुप्तं ददर्शान्तःपुरं महत्॥ १०॥

वानरों से भरी-पूरी और अत्यन्त सुरक्षित सात ड्योढ़ियों को पारकर लक्ष्मणजी ने सुग्रीव के विशाल अन्तःपुर को देखा।

हेमराजतपर्यङ्कैर्बहुभिश्च वरासनैः।
महार्हास्तरणोपेतैस्तत्र तत्रोपशोभितम्॥ ११॥

अन्तःपुर में जहाँ-तहाँ सोने-चाँदी के पलंग, अनेक प्रकार के सुन्दर आसन और बहुमूल्य बिछौनों को भी लक्ष्मणजी ने देखा।

प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वरम्।
तन्त्रीगीतसमाकीर्णं समगीतपदाक्षरम्॥ १२॥

अन्तःपुर में प्रवेश करते ही लक्ष्मणजी ने मधुर स्वर में, ताल और लय से तथा वीणा के ऊपर गाया जानेवाला गाना सुना।

बह्वीश्च विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः।
स्त्रियः सुग्रीवभवने ददर्श स महाबलः॥ १३॥

लक्ष्मणजी ने सुग्रीव के अन्तःपुर में रूप और यौवन के मद में मस्त बहुत-सी और विविध आकार-प्रकार की स्त्रियाँ देखीं।

कूजितं नूपुराणां च काञ्चीनां निनदं तथा।
सन्निशम्य ततः श्रीमान् सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत्॥ १४॥

राजमहल की स्त्रियों के नूपुरों=बिछवों और काञ्ची=तगड़ी की मनोरम झंकार को सुनकर श्रीमान् सुमित्रानन्दन लक्ष्मण लज्जित हो गये।

रोषवेगप्रकुपितः श्रुत्वा चाभरणस्वनम्।
चकार ज्यावनं वीरो दिशः शब्देन पूरयन्॥ १५॥

आभूषणों की झंकार सुनकर लक्ष्मण रोष के वेग से अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने धनुष की प्रत्यञ्चा को ऐसा टंकारा कि उस टंकार से सारी दिशाएँ गुञ्जायमान हो गईं।

चारित्रेण महाबाहुरपकृष्टः स लक्ष्मणः।
तस्थावेकान्तमाश्रित्य रामशोकसमन्वितः॥ १६॥

चरित्ररूपी आभूषण से समलंकृत महाबाहु लक्ष्मण, जो राम के शोक से स्वयं भी दुःखी हो रहे थे और आगे न जा सके तथा वहीं एकान्त स्थान देखकर खड़े हो गये।

तेन चापस्वनेनाथ सुग्रीवः प्लवगाधिपः।
विज्ञायाऽऽगमनं त्रस्तः संचचाल वरासनात्॥ १७॥

वानरराज सुग्रीव उस धनुष की टंकार को सुनकर जान गये कि लक्ष्मणजी आ पहुँचे हैं, अतः वे अत्यन्त भयभीत होकर अपना बहुमूल्यासन छोड़कर खड़े हो गये।

ततस्तारां हरिश्रेष्ठः सुग्रीवः प्रियदर्शनाम्।
उवाच हितमव्यग्रस्त्राससम्भ्रान्तमानसः॥ १८॥

तत्पश्चात् भय से उद्भ्रान्त सुग्रीव प्रियदर्शना तारा से अपने हित के लिए धैर्यपूर्वक ये वचन बोले—

किं नु तत्कारणं सुभ्रु प्रकृत्या मृदुमानसः।
सरोष इव सम्प्राप्तो येनायं राघवानुजः॥ १९॥

हे सुन्दर भौंहोंवाली! लक्ष्मणजी के क्रुद्ध होने का कारण क्या है? लक्ष्मणजी तो स्वभाव से ही कोमलचित्त हैं, फिर ये क्रुद्ध होकर क्यों आये हैं? मैं इसका निश्चय नहीं कर सका हूँ?

यदस्य कृतमस्माभिर्बुध्यसे किञ्चिदप्रियम्।
तद्बुद्ध्या सम्प्रधार्याशु क्षिप्रमर्हसि भाषितुम्॥ २०॥

यदि तुम्हारी समझ में हम लोगों से राम या लक्ष्मण का कोई अपराध हो गया हो तो विचार कर उसके लिए शीघ्र कोई उपाय बतलाओ।

अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनि।
वचनैः सान्त्वयुक्तैश्च प्रसादयितुमर्हसि॥ २१॥

अथवा हे भामिनि! तुम स्वयं लक्ष्मणजी के पास जाकर उनसे मिलो तथा प्रिय एवं शान्तिमय वचनों से समझा-बुझाकर उन्हें प्रसन्न करो।

त्वद्दर्शनविशुद्धात्मा न स कोपं करिष्यति।
न हि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम्॥ २२॥

लक्ष्मणजी शुद्धान्तःकरणवाले हैं, अतः तुम्हें देखकर वे कुपित नहीं होंगे, क्योंकि महात्मा लोग



स्त्रियों के साथ कठोर व्यवहार नहीं करते।

त्वया सान्त्वैरुपक्रान्तं प्रसन्नेन्द्रियमानसम्।
ततः कमलपत्राक्षं द्रक्ष्याम्यहमरिन्दमम्॥ २३॥

तुम्हारे समझाने-बुझाने पर जब उनका क्रोध शान्त हो जायेगा और वे प्रसन्न हो जायेंगे तब मैं उन शत्रुहन्ता, कमलनयन लक्ष्मणजी से भेंट करूँगा।

सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी
प्रलम्बकाञ्चीगुणहेमसूत्रा।
सुलक्षणा लक्ष्मणसन्निधानं
जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः॥ २४॥

(सुग्रीव के ऐसा कहने पर) मद की मादकता से जिसकी आँखें चढ़ी हुई हैं, जिसकी तगड़ी और स्वर्णहार की लड़ें अस्त-व्यस्त होकर लटक रही हैं, नशे के कारण जिसके पैर लड़खड़ा रहे हैं, ऐसी उत्तम लक्षणोंवाली तारा अत्यन्त नम्र अवस्था में लक्ष्मणजी के समीप पहुँची।

स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं
तस्थावुदासीनतया महात्मा।
अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्रपुत्रः
स्त्रीसन्निकर्षाद्विनिवृत्तकोपः॥ २५॥

कपिराज सुग्रीव की धर्मपत्नी तारा को देखकर उदासीन भाव को प्रकट करते हुए महात्मा राजकुमार लक्ष्मण ने मुख नीचा कर लिया। स्त्री को अपने समीप आई हुई देखकर उनका क्रोध भी शान्त हो गया।

सा पानयोगाद्विनिवृत्तलज्जा
दृष्टिप्रसादाच्च नरेन्द्रसूनोः।
उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं
वाक्यं महार्थं परिसान्त्वपूर्वम्॥ २६॥

मदपान के कारण लज्जाहीन और राजकुमार लक्ष्मणजी की कृपापूर्ण दृष्टि को देखकर तारा प्रेमपूर्वक, गर्वमिश्रित एवं सान्त्वनापूर्वक लक्ष्मणजी से बोली—

किं कोपमूलं मनुजेन्द्रपुत्र
कस्ते न सन्तिष्ठति वाङ्निदेशे।
कः शुष्कवृक्षं वनमापतन्तं
दावाग्निमासीदति निर्विशङ्कः॥ २७॥

हे राजकुमार! आपके क्रुद्ध होने का कारण क्या है? किसने आपकी आज्ञा की अवज्ञा की है? सूखे वृक्षोंवाले वन में आग लगाकर कौन अभागा निर्भय होकर रहना चाहता है?

स तस्या वचनं श्रुत्वा सान्त्वपूर्वमशङ्कितम्।
भूयः प्रणयदृष्टार्थं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्॥ २८॥

लक्ष्मणजी, तारा के ऐसे स्नेहसिक्त, निर्भीक और सान्त्वनाप्रद वचनों को सुनकर अतिशय स्नेह दिखलाते हुए बोले—

किमयं कामवृत्तस्ते लुप्तधर्मार्थसंग्रहः।
भर्ता भर्तृहिते युक्ते न चैनमवबुध्यसे॥ २९॥

धर्म और अर्थ को लुप्त करनेवाला तुम्हारा पति इतना कामासक्त क्यों हो गया है? तुम तो उसकी हितैषिणी हो फिर तुम उसे समझाती क्यों नहीं?

स मासांश्चतुरः कृत्वा प्रमाणं प्लवगेश्वरः।
व्यतीतांस्तान्मदव्यग्रो विहरन्नावबुध्यते॥ ३०॥

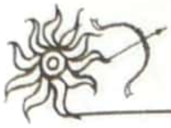
देखो, कपिराज सुग्रीव ने चार मास पश्चात् सीता को ढूँढ़ने की प्रतिज्ञा की थी, वह अवधि समाप्त हो गई, किन्तु भोग-विलास में लिप्त एवं मदमत्त सुग्रीव को इस बात की कोई चिन्ता नहीं है।

न हि धर्मार्थसिद्ध्यर्थं पानमेवं प्रशस्यते।
पानादर्थश्च धर्मश्च कामश्च परिहीयते॥ ३१॥

धर्म-अर्थ की सिद्धि के लिए मद्यपान हितकारी नहीं माना जाता, क्योंकि मादक वस्तु के प्रयोग से मनुष्य के धर्म-अर्थ और काम नष्ट हो जाते हैं।

धर्मलोपो महांस्तावत्कृते ह्यप्रतिकुर्वतः।
अर्थलोपश्च मित्रस्य नाशे गुणवतो महान्॥ ३२॥

उपकारी के उपकार का यदि प्रत्युपकार न किया जाए तो महान् अधर्म होता है। गुणगान् मित्र के साथ यदि विरोध हो गया या मैत्री टूट गई तो इससे अर्थनाश



होता है—बड़ी भारी हानि होती है।

मित्रं ह्यर्थगुणश्रेष्ठं सत्यधर्मपरायणम्।
तदद्वयं परित्यक्तं न तु धर्मे व्यवस्थितम्॥ ३३॥

छल-कपटरहित होकर मित्र का काम पूर्ण करना और अपने सद्व्यवहार से मित्र को सन्मार्ग का पथिक बनाना—ये मित्र के दो प्रशंसित गुण हैं। राजा सुग्रीव ने इन दोनों को त्याग दिया है और वे अपनी मर्यादा में स्थिर नहीं हैं।

तदेवं प्रस्तुते कार्ये कार्यमस्माभिरुत्तरम्।
यत्कार्यं कार्यतत्त्वज्ञे तदुदाहर्तुमर्हसि॥ ३४॥

हे कार्यतत्त्वज्ञे तारे! इस समय इस उपस्थित कार्य में हमें आगे क्या करना चाहिए यह तुम्हीं बतलाओ।

सा तस्य धर्मार्थसमाधियुक्तं
निशम्य वाक्यं मधुरस्वभावम्।
तारा गतार्थे मनुजेन्द्रकार्ये
विश्वासयुक्तं तमुवाच भूयः॥ ३५॥

धर्म-अर्थ के निर्णय से युक्त, विश्वास से पूर्ण, मधुर स्वभाववाले लक्ष्मण के वचनों को सुनकर तारा श्रीराम के उस कार्य के सम्बन्ध में, जिसकी अवधि बीत चुकी थी, विश्वास दिलाती हुई लक्ष्मणजी से बोली—

न कोपकालः क्षितिपालपुत्र
न चातिकोपः स्वजने विधेयः।
त्वदर्थकामस्य जनस्य तस्य
प्रमादमप्यर्हसि वीर सोढुम्॥ ३६॥

हे राजकुमार! न तो यह क्रोध करने का समय है और न आत्मीय जनों पर कोप करना ही चाहिए। वीर! आपके कार्य में तत्पर अपने व्यक्तियों से कोई अपराध या प्रमाद भी हो जाए तो उसे क्षमा कर देना चाहिए।

तं कामवृत्तं मम सन्निकृष्टं
कामाभियोगाच्च निवृत्तलज्जम्।
क्षमस्व तावत्परवीरहन्तस्
त्वद्भ्रातरं वानरवंशनाथम्॥ ३७॥

हे शत्रुहन्ता! इस समय आप अपने भाई सुग्रीव को, जो कामासक्त होकर निर्लज्ज हो गया है और आपके भय से मेरे पास छिपा हुआ है, क्षमा कीजिए।

उद्योगस्तु चिराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम।
कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने॥ ३८॥

हे नरश्रेष्ठ! कामासक्त होने पर भी सुग्रीव ने आपकी कार्यसिद्धि के लिए अपने मन्त्रियों को बहुत पहले ही उद्योग करने की आज्ञा दे दी है।

तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया।
अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम्॥ ३९॥

हे महाबाहो! आपने अन्तःपुर में प्रवेश न कर सदाचार की भली-भाँति रक्षा की है। अब आप अन्तःपुर में प्रवेश कीजिए, क्योंकि कपट-रहित, मित्रभाव से मित्र की स्त्री को देखना दोष का कारण नहीं है।

तारया चाभ्यनुज्ञातस्त्वरया चापि चोदितः।
प्रविवेश महाबाहुरभ्यन्त्रमरिन्दमः॥ ४०॥

शत्रुनाशक, विशाल भुजावाले लक्ष्मणजी ने देवी तारा की अनुमति पाने पर और शीघ्रता से भीतर चलने के लिए प्रेरित करने पर राजमहल में प्रवेश किया।

ततः सुग्रीवमासीनं काञ्चने परमासने।
महार्हास्तरणोपेते ददर्शादित्यसन्निभम्॥ ४१॥

अन्दर जाकर लक्ष्मणजी ने देखा कि सूर्य के समान देदीप्यमान कान्तिवाले सुग्रीव मूल्यवान् बिछौनेवाले स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान हैं।

विशेष—पाठकगण इस सर्ग का ध्यानपूर्वक अवलोकन करें। इस सर्ग में वानर वीरों के रहन-सहन, भव्य-भवनों वस्त्राभूषणों आदि का जो चित्रण किया गया है उससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि हनुमान् आदि पुच्छ विशिष्ट आजकल के वानर नहीं थे। वे मनुष्य ही थे। वाल्मीकि ने बाली-सुग्रीव आदि के लिए 'आर्य' विशेषण दिया है। तारा को मन्त्रवित् कहा है और हनुमान्जी को वेदादि शास्त्रों और व्याकरण



का महापण्डित बताया है। ये लक्षण आजकल के वानरों में नहीं घट सकते। वानरों की इतनी उच्च सभ्यता एवं संस्कृति को देखकर भी उन्हें लाल मुखवाला बन्दर ही मानना अपनी बुद्धि के दिवालियापन को प्रकट करना है।

➤ षड्विंशः सर्गः ➤ (२६)

लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव की भर्त्सना—

सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा प्रविष्टं पुरुषर्षभम्।
उत्पपात हरिश्रेष्ठो हित्वा सौवर्णमासनम्॥ १॥

पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजी को अन्तःपुर में आते हुए देखकर कपि-प्रवर सुग्रीव अपने स्वर्णमय सिंहासन को छोड़कर खड़े हो गये।

उत्पतन्तमनुत्पेतू रुमाप्रभृतयः स्त्रियः।
सुग्रीवं गगने पूर्णचन्द्रं तारागणा इव॥ २॥

सुग्रीव के खड़े होते ही रुमा प्रभृति राजमहल की सभी स्त्रियाँ उठ खड़ी हुईं। उस समय उन स्त्रियों के मध्य सुग्रीव ऐसे सुशोभित हुए जैसे आकाश में तारों के मध्य चन्द्रमा सुशोभित होता है।

रुमाद्वितीयं सुग्रीवं नारीमध्यगतं स्थितम्।
अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धः सतारं शशिनं यथा॥ ३॥

ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा के समान स्त्री-मण्डल के मध्य में रुमा के सहित खड़े हुए सुग्रीव से क्रुद्ध लक्ष्मणजी ने कहा—

सत्त्वाभिजनसम्पन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।
कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते॥ ४॥

श्रेष्ठ कुलोत्पन्न, दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ एवं सत्यवादी राजा ही संसार में पूजनीय होता है।

यस्तु राजा स्थितोऽधर्मे मित्राणामुपकारिणाम्।
मिथ्याप्रतिज्ञां कुरुते को नृशंसतरस्ततः॥ ५॥

जो राजा कुमार्गगामी है, उपकारी मित्रों के साथ प्रतिज्ञा करके उसे पूरी नहीं करता, उससे बढ़कर निर्दयी और क्रूर व्यक्ति संसार में कौन होगा?

शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं तु गवानृते।
आत्मानं स्वजनं हन्ति पुरुषः पुरुषानृते॥ ६॥

जो एक घोड़े के लिए झूठ बोलता है उसे सौ घोड़े मारने का पाप लगता है। एक गाय के बारे में जो झूठ बोलता है उसे एक सहस्र गोघात का पाप लगता है और पुरुष के विषय में झूठ बोलने से आत्महत्या और स्वजन-हत्या के बराबर पाप लगता है।

पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः।
कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर॥ ७॥

हे वानरराज! जो व्यक्ति पहले मित्र से अपना प्रयोजन सिद्ध करा ले तथा उस उपकारी मित्र का प्रत्युपकार न करे, वह पुरुष कृतघ्न कहलाता है और मार डालने योग्य है।

गीतोऽयं ब्रह्मणा श्लोकः सर्वलोकनमस्कृतः।
दृष्ट्वा कृतघ्नं क्रुद्धेन तं निबोध प्लवङ्गम॥ ८॥

हे वानर! सबके पूजनीय ब्रह्माजी ने कृतघ्न को देखकर क्रुद्ध होकर जो श्लोक कहा था, उसे तुम सुनो—

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥ ९॥

सत्पुरुषों के मतानुसार ब्राह्मण के मारनेवाले, मद्य पीनेवाले, चोरी करनेवाले और व्रतभङ्ग करनेवाले का उद्धार हो सकता है, इनके पाप का प्रायश्चित्त हो सकता है, किन्तु कृतघ्न के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

अनार्यस्त्वं कृतघ्नश्च मिथ्यावादी च वानर।
पूर्वं कृतार्थो रामस्य न तत्प्रतिकरोषि तत्॥ १०॥

हे वानर! तुम अनार्य=नीच, कृतघ्न और झूठे हो, क्योंकि श्रीराम के द्वारा अपना काम निकालकर तुम

उनका कार्य नहीं कर रहे हो।

ननु रामकृतार्थेन त्वया रामस्य वानर।
सीताया मार्गणे यत्नः कर्तव्यः कृतमिच्छता॥ ११॥

हे वानर! जब श्रीराम ने तुम्हारा कार्य कर दिया तब सफल मनोरथ तुम्हें राम के उपकार का स्मरण करते हुए सीताजी के अन्वेषण का प्रयत्न करना चाहिए।

स त्वं ग्राम्येषु भोगेषु सक्तो मिथ्याप्रतिश्रवः।
न त्वां रामो विजानीते सर्पं मण्डूकराविणम्॥ १२॥

मिथ्या प्रतिज्ञा करके तुम तो नीच सुख-भोगों में फंसे हुए हो। खेद है श्रीराम मेंढक पकड़ने के लिए मेंढक की बोली बोलनेवाले सर्प के समान तुम्हें पहचान न सके।

महाभागेन रामेण पापः करुणावेदिना।
हरीणां प्रापितो राज्यं त्वं दुरात्मा महात्मना॥ १३॥

महाभाग, दयालु, महात्मा राम ने तुम जैसे चरित्रहीन, दुष्ट, पापी को वानरों का परम्परागत राज्य दिला दिया।

कृतं चेन्नाभिजानीषे रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
सद्यस्त्वं निशितैर्बाणैर्हतो द्रक्ष्यसि बालिनम्॥ १४॥

यदि तुम अक्लिष्टकर्मा श्रीराम के पूर्वकृत उपकार का विचार न करोगे तो शीघ्र ही तुम उनके बाण से प्राण-त्याग कर बाली से भेंट करोगे।

न च सङ्कुचितः पन्थाः येन बाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगा॥ १५॥

मरने के पश्चात् जिस मार्ग से बाली ने प्रस्थान किया है वह मार्ग अभी बन्द नहीं हुआ है अतः तुम अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहो, बाली के मार्ग का अनुसरण मत करो।

➤ सप्तविंशः सर्गः ➤ (२७)

तारा का लक्ष्मण को शान्त करना—

तथा ब्रुवाणं सौमित्रिं प्रदीप्तमिव तेजसा।
अब्रवील्लक्ष्मणं तारा ताराधिपनिभानना॥ १॥

अपने तेज से देदीप्यमान लक्ष्मणजी के ऐसा कहने पर चन्द्रमुखी तारा लक्ष्मणजी से बोली—

नैवं लक्ष्मण वक्तव्यो नायं परुषमर्हति।
हरीणामीश्वरः श्रोतुं तव वक्त्राद्विशेषितः॥ २॥

हे लक्ष्मण! आपको ऐसे कठोर वचन नहीं कहने चाहिएँ। ये वानरों के राजा हैं अतः विशेषकर आपके मुख से ऐसे वचन सुनने के योग्य नहीं हैं।

नैवाकृतज्ञः सुग्रीवो न शठो नापि दारुणः।
नैवानृतकथो वीर न जिह्मश्च कपीश्वरः॥ ३॥

हे वीर! यह सुग्रीव न तो कृतघ्न है, न शठ है और न क्रूर है और न कुटिल है।

उपकारं कृतं वीरो नाप्ययं विस्मृतः कपिः।
रामेण वीर सुग्रीवो यदन्यैर्दुष्करं रणे॥ ४॥

हे वीर! राम ने युद्ध में जो कार्य किया है वह अन्यों के लिए दुष्कर है। हे सौम्य! राम के किये हुए उस उपकार को सुग्रीव भूले नहीं हैं।

रामप्रसादात्कीर्तिं च कपिराज्यं च शाश्वतम्।
प्राप्तवानिह सुग्रीवो रुमां मां च परन्तप॥ ५॥

हे शत्रुसन्तापक! श्रीराम के अनुग्रह से ही सुग्रीव को यश, परम्परागत वानरराज, रुमा और मेरी प्राप्ति हुई है।

सुदुःखं शयितः पूर्वं प्राप्येदं सुखमुत्तमम्।
प्राप्तकालं न जानीते विश्वामित्रो यथा मुनिः॥ ५॥

पहले इन्होंने अपनी रात्रियाँ दुःखपूर्वक सोकर बिताई थीं। अब उत्तम सुख को प्राप्त कर भोगविलास में लिप्त सुग्रीव को समय जाता ऐसे ही दिखाई नहीं देता जैसे विश्वामित्र को समय को ज्ञान नहीं रहा था।

घृताच्यां किल संसक्तो दश वर्षाणि लक्ष्मणः।
अहोऽमन्यत धर्मात्मा विश्वामित्रो महामुनिः॥ ६॥



हे लक्ष्मण! विश्वामित्र दस वर्ष तक घृताची[१] अप्सरा के साथ विहार करते रहे। उन महर्षि विश्वामित्र ने उन दस वर्षों को एक दिन के समान ही समझा।

स हि प्राप्तं न जानीते कालं कालविदां वरः।
विश्वामित्रो महातेजाः किं पुनर्यः पृथग्जनः॥ ८॥

जब काल के जाननेवालों में श्रेष्ठ महातेजस्वी विश्वामित्र को ही (विषय-भोग में फंसने के कारण) काल का ज्ञान नहीं रहा, फिर साधारण लोगों की तो बात ही क्या है?

देहधर्मं गतस्यास्य परिश्रान्तस्य लक्ष्मण।
अवितृप्तस्य कामेषु रामः क्षन्तुमिहार्हति॥ ९॥

हे लक्ष्मण! शरीर स्वभाव के वशवर्ती, अत्यन्त श्रान्त और कामवासना से अतृप्त सुग्रीव के अपराध को आप श्रीराम से क्षमा करा दें।

रुमां मां कपिराज्यं च धनधान्यवसूनि च।
रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदिति मतिर्मम॥ १०॥

(सुग्रीव श्रीराम के कार्य को भूले नहीं हैं) मेरा तो यह मत है कि सुग्रीव आवश्यकता पड़ने पर श्रीराम के कार्य के लिए रुमा को, मुझको, वानरों के राज्य को, धन-धान्य और रत्न आदि को भी त्याग देंगे।

समानेष्यति सुग्रीवः सीतया सह राघवम्।
शशाङ्कमिव रोहिण्या निहत्वा रावणं रणे॥ ११॥

सुग्रीव राक्षसाधम रावण को मारकर श्रीराम के साथ सीता को उसी प्रकार लौटा लायेंगे जैसे रोहिणी चन्द्रमा के साथ मिलती है।

त्वत्सहायनिमित्तं वै प्रेषिता हरिपुङ्गवाः।
आनेतुं वानरान् युद्धे सुबहून् हरियूथपान॥ १२॥

संग्राम में आपकी सहायता के लिए कपिराज सुग्रीव ने बहुत-से वानर यूथप बुलवाये हैं और उन्हें बुलाने के लिए बहुत-से वानर वीर भेजे हैं।

कृताऽत्र संस्था सौमित्रे सुग्रीवेण यथा पुरा।
अद्य सर्वैरागन्तव्यं जहि कोपमरिन्दम॥ १३॥

हे अरिमर्दन लक्ष्मण! सुग्रीव ने जो व्यवस्था पहले ही से कर रखी है उसके अनुसार उन सब वानरों को आज यहाँ पहुँच जाना चाहिए। आप अपने क्रोध को शान्त करें।

अष्टाविंशः सर्गः (२८)

सुग्रीव का लक्ष्मण से अनुरोध—

इत्युक्तस्तारया वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम्।
मृदुस्वभावः प्रतिजग्राह तद्वचः॥ १॥

जब तारा ने इस प्रकार विनीत भाव से धर्मयुक्त वचन कहे तब कोमल स्वभाव लक्ष्मण ने उसकी बात मान ली तथा अपने क्रोध को शान्त कर लिया।

स लक्ष्मणं भीमबलं सर्ववानरसत्तमः।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवः सम्प्रहर्षयन्॥ २॥

जब लक्ष्मणजी शान्त हो गये तब वानरश्रेष्ठ सुग्रीव महाबली लक्ष्मण को प्रसन्न करने के लिए नम्रतापूर्वक उनसे बोले—

प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शावश्तम्।
रामप्रसादात्सौमित्रे पुनः प्राप्तमिदं मया॥ ३॥

हे लक्ष्मण! मैंने राम की कृपा से खोई हुई अपनी श्रीरूपा स्त्री, यश और परम्परागत कपिराज्य को पुनः प्राप्त किया है।

कः शक्तस्तस्य देवस्य विख्यातस्य स्वकर्मणा।
तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज॥ ४॥

हे राजकुमार! अपने (अद्भुत) कर्मों द्वारा संसार में प्रसिद्ध, देव-स्वरूप श्रीराम के उपकार का किञ्चित्-

१. इतिहास में मेनका नाम आया है। हो सकता है, यहाँ घृताची से तारा का अभिप्राय मेनका से ही हो।



मात्र बदला चुकाने में भी कौन समर्थ हो सकता है?

सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम्।
सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा॥ ५॥

धर्मात्मा श्रीराम अपने तेज और पराक्रम से रावण का वध करेंगे तथा जानकी को प्राप्त करेंगे मैं तो इन कार्यों में नाममात्र को उनका सहायक रहूँगा।

सहायकृत्यं किं तस्य येन सप्त महाद्रुमाः।
शैलश्च वसुधा चैव बाणेनैकेन दारिताः॥ ६॥

जिस नर-पुङ्गव ने अपने एक ही बाण से सात साल वृक्षों को वेध कर पर्वत और भूमि को भी विदीर्ण कर डाला उसे दूसरे की सहायता की आवश्यकता ही क्या है?

धनुर्विस्फारमानस्य यस्य शब्देन लक्ष्मण।
सशैला कम्पिता भूमिः सहायैस्तस्य किं नु वै॥ ६॥

हे लक्ष्मण! जिसके धनुष की प्रत्यञ्चा=डोरी की टंकार से पर्वतों सहित यह पृथिवी भी काँप उठती है उसे सहायकों की क्या आवश्यकता है?

अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ।
गच्छतो रावणं हन्तुं वैरिणं सपुरःसरम्॥ ८॥

हे नरश्रेष्ठ! जिस समय अपने अनुगामियों के साथ नरेन्द्र श्रीराम वैरी रावण का वध करने के लिए संग्राम-यात्रा करेंगे, तब मैं भी उनके पीछे हो लूँगा।

यदि किञ्चिदतिक्रान्तं विश्वासात्प्रणयेन वा।
प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति॥ ६॥

यदि विश्वास अथवा स्नेह के वशवर्ती हो इस सेवक से कोई अपराध हो भी गया हो तो वे उस अपराध को क्षमा कर दें क्योंकि ऐसा सेवक तो विरला ही होता है जिससे स्वामी का कोई अपराध न होता हो।

इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
अभवल्लक्ष्मणः प्रीतः प्रेम्णा चैनमुवाच ह॥ १०॥

महात्मा सुग्रीव के ऐसे मनोहारी वचनों को सुनकर लक्ष्मणजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और प्रेम-पूर्वक सुग्रीव से बोले—

सर्वथा हि मम भ्राता सनाथो वानरेश्वर।
त्वया नाथेन सुग्रीव प्रश्रितेन विशेषतः॥ ११॥

हे कपिराज! आप जैसे विनम्र और स्नेह-युक्त सहायक को पाकर मेरे ज्येष्ठ भाई श्रीराम हर प्रकार से आश्रययुक्त एवं सनाथ हैं।

यस्ते प्रभावः सुग्रीव यच्च ते शौचमार्जवम्।
अर्हस्त्वं कपिराज्यस्य श्रियं भोक्तुमनुत्तमाम्॥ १२॥

हे सुग्रीव! जैसा आपका प्रताप है, जैसा शुद्ध व्यवहार है और जैसी आपमें सरलता है उससे तुम इस वानर राज्य की उत्तम राजलक्ष्मी को भोगने के सर्वथा योग्य हो।

सहायेन च सुग्रीव त्वया रामः प्रतापवान्।
वधिष्यति रणे शत्रूनचिरान्नात्र संशयः॥ १३॥

हे सम्राट् सुग्रीव! आपकी अनुपम सहायता से प्रतापी श्री रामचन्द्रजी संग्राम में शीघ्र ही वैरी रावण का सपरिवार वध करेंगे इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
उपपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम्॥ १४॥

हे सुग्रीव! तुम मित्रधर्म को जाननेवाले, किये हुए उपकार को माननेवाले और रणक्षेत्र में पीठ न दिखानेवाले हो। आप जो कुछ रहे हैं वह सब उचित ही है।

किं तु शीघ्रमितो वीर निष्क्राम त्वं मया सह।
सान्त्वयस्व वयस्यं त्वं भार्याहरणकर्शितम्॥ १५॥

परन्तु हे वीर! अब आप शीघ्र ही मेरे साथ इस स्थान से चलें और अपनी पत्नी के हरण से दुःखी अपने मित्र श्रीराम को सान्त्वना प्रदान करें।

यच्च शोकाभिभूतस्य श्रुत्वा रामस्य भाषितम्।
मया त्वं परुषाण्युक्तस्तच्च त्वं क्षन्तुमर्हसि॥ १६॥

हे मित्र! शोक से व्याकुल श्रीराम की बातें सुनकर मैंने आपसे जो कठोर वचन कहे हैं उनके लिए आप मुझे क्षमा करें।



➤ एकोनत्रिंशः सर्गः ➤ (२९)

सुग्रीव का वानरी सेना को बुलाने का आदेश देना—

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना।
हनुमन्तं स्थितं पार्श्वे सचिवं त्विदमब्रवीत्॥ १॥

महात्मा लक्ष्मण के ऐसा कहने पर सुग्रीव समीप ही खड़े हुए अपने सचिव हनुमान् से बोले—

वनेषु च सुरम्येषु सुगन्धिषु महत्सु च।
तापसानां च रम्येषु वनान्तेषु समन्ततः॥ २॥
तांस्तान् समानय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान्।
सामदानादिभिः सर्वैराशु प्रेषय वानरान्॥ ३॥

विशाल रमणीय और सुगन्धित वनों में रहनेवाले, तपस्वियों के मनोहर आश्रमों में रहनेवाले और वनप्रान्तों में पृथक्-पृथक् रहनेवाले—सारांश यह कि पृथिवी-मण्डल पर जहाँ-जहाँ भी वानर हों उन सभी को साम-दान आदि सम्पूर्ण प्रयत्नों से शीघ्र यहाँ बुला लो।

प्रेषिताः प्रथमं ये च मया दूता महाजवाः।
त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं हरीन् सम्प्रेषयापरान्॥ ४॥

मैंने शीघ्रगामी जिन दूतों को पहले भेजा था उनसे अपना कार्य पूर्ण कराने के लिए तुम अन्य वानरों को भेजो।

ये प्रसक्ताश्च कामेषु दीर्घसूत्राश्च वानराः।
इहानयस्व तान् सर्वान् शीघ्रं तु मम शासनात्॥ ५॥

जो वानर भोग-विलास में आसक्त हैं अथवा जो दीर्घसूत्री=थोड़े समय के कार्य को देर में करनेवाले हैं, उन सभी को मेरी आज्ञा सुनाकर तुरन्त यहाँ बुलवा लो।

अहोभिर्दशभिर्ये हि नागच्छन्ति ममाज्ञया।
हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासनदूषकाः॥ ६॥

जो वानर मेरी आज्ञा से दस दिन के भीतर यहाँ न आ जाएँ ऐसे राजाज्ञा भङ्ग करनेवाले दुष्ट-आत्माओं को तुम प्राणदण्ड दे सकते हो।

तस्य वानरराजस्य श्रुत्वा वायुसुतो वचः।
दिक्षु सर्वासु विक्रान्तान् प्रेषयामास वानरान्॥ ७॥

वानरराज सुग्रीव का ऐसा आदेश पाकर पवनकुमार हनुमान्जी ने सब दिशाओं में पराक्रमी वानर भेज दिये।

मृत्युकालोपमस्याज्ञां राजराजस्य वानराः।
सुग्रीवस्याययुः श्रुत्वा सुग्रीवभयदर्शिनः॥ ८॥

यमराज के समान कठोर दण्ड देनेवाले कपिराज सुग्रीव की आज्ञा को सुनकर और उसके भय से संत्रस्त होकर सब वानर सुग्रीव के पास जाने के लिए प्रस्थानित हुए।

वनेभ्यो गह्वरेभ्यश्च सरिद्भ्यश्च महाजवाः।
आगच्छद्वानरी सेना पिबन्तीव दिवाकरम्॥ ९॥

किष्किन्धा में वनों से, गिरी-गुहाओं और नदियों के तटों से महाबलवान् वानरी सेनाएँ ऐसे आईं कि उनके चरणों से उठी हुई धूलि से सूर्य आच्छादित हो गया।

➤ त्रिंशः सर्गः ➤ (३०)

सुग्रीव का राम के पास जाना—

स लक्ष्मणो भीमबलं सर्ववानरसत्तमम्।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं सम्प्रहर्षयन्॥ १॥

(जब सुग्रीव हनुमान्जी को आज्ञा दे चुके) तब लक्ष्मणजी सुग्रीव को प्रसन्न करते हुए उन महाबली कपिश्रेष्ठ सुग्रीव से विनम्र भाव से बोले—

किष्किन्धाया विनिष्क्राम यदि ते सौम्य रोचते।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य सुभाषितम्॥ २॥



सुग्रीवः परमप्रीतो वाक्यमेतदुवाच ह।
एवं भवतु गच्छावः स्थेयं त्वच्छासने मया॥ ३॥

हे सौम्य! यदि आप पसन्द करें तो अब हम लोग किष्किन्धा से प्रस्थान करें। लक्ष्मणजी के इस मनोहारी वचन को सुनकर राजा सुग्रीव प्रसन्न होते हुए बोले—''बहुत अच्छा। आइए हम लोग चलें। मैं तो आपका आज्ञा-पालक हूँ।''

तमेवमुक्त्वा सुग्रीवो लक्ष्मणं शुभलक्षणम्।
विसर्जयामास तदा तारामन्याश्च योषितः॥ ४॥

शुभ-लक्षणयुक्त लक्ष्मणजी से ऐसा कहकर सुग्रीव ने तारा तथा अन्य स्त्रियों को वहाँ से अन्तःपुर जाने के लिए विदा किया।

एहीत्युच्चैर्हरिवरान् सुग्रीवः समुदाहरत्।
तानुवाच ततः प्राप्तान् राजाऽर्कसदृशप्रभः॥ ५॥

स्त्रियों को विदाकर सुग्रीव ने कुछ श्रेष्ठ वानरों को—''यहाँ आओ''—ऐसा कहकर बुलाया। जब वे लोग आ गये तब सूर्य के समान देदीप्यमान कान्ति-वाले सुग्रीव ने उन्हें यह आदेश दिया—

उपस्थापयत क्षिप्रं शिबिकां मम वानराः।
श्रुत्वा तु वचनं तस्य हरयः शीघ्रविक्रमाः॥ ६॥
समुपस्थापयामासुः शिबिकां प्रियदर्शनाम्।
तामुपस्थापि दृष्ट्वा शिबिकां वानराधिपः॥ ७॥
लक्ष्मणारुह्यतां शीघ्रमित्युक्त्वा काञ्चनं यानम्।
बृहद्भिर्हरिभिर्युक्तमारुरोह सलक्ष्मणः॥ ८॥
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि।
निर्ययौ प्राप्य सुग्रीवो राज्यश्रियमनुत्तमाम्॥ ९॥

हे वानरो! शीघ्र जाकर मेरी पालकी ले आओ। सुग्रीव का आदेश पाकर शीघ्रगामी और पराक्रमी वानरों ने अति सुन्दर एवं मनोहर पालकी लाकर उपस्थित कर दी। पालकी को वहाँ उपस्थित देख कपिराज सुग्रीव ने लक्ष्मणजी से कहा—आप जल्दी से इस पर सवार हों। लक्ष्मणजी से ऐसा कहकर सुग्रीव लक्ष्मणजी के साथ उस स्वर्णमय पालकी पर सवार हुए जिसे उठाने के लिए बड़े-बड़े वानर नियुक्त थे। सुग्रीव के मस्तक पर राजकीय श्वेत छत्र लगाया गया। इस प्रकार उत्कृष्ट राजलक्ष्मी से युक्त होकर वानरराज सुग्रीव अन्तःपुर से बाहर निकले।

स वानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिः शस्त्रपाणिभिः।
परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः॥ १०॥

तीक्ष्ण स्वभाववाले और शस्त्रधारी अपने अङ्गरक्षकों से घिरे हुए राजा सुग्रीव उस स्थान की ओर चले जहाँ श्रीराम निवास कर रहे थे।

स तं देशमनुप्राप्य श्रेष्ठं रामनिषेवितम्।
अवातरन् महातेजाः शिबिकायाः सलक्ष्मणः॥ ११॥

जहाँ श्रीराम ठहरे हुए थे उस उत्तम स्थान पर पहुँचकर महातेजस्वी सुग्रीव लक्ष्मण सहित पालकी से उतर पड़े।

आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलिपुटोऽभवत्।
प्रेम्णा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे॥ १२॥

पालकी से उतरकर सुग्रीव हाथ जोड़कर राम के सामने जाकर खड़े हो गये। श्रीराम ने भी उन्हें अत्यन्त प्रेम के साथ और सम्मानपूर्वक अपने हृदय से लगाया।

परिष्वज्य च धर्मात्मा निषीदेति ततोऽब्रवीत्।
तं निषण्णं ततो दृष्ट्वा क्षितौ रामोऽब्रवीद्वचः॥ १३॥

सुग्रीव का आलिंगन करने के पश्चात् धर्मात्मा श्रीराम ने उन्हें बैठने के लिए कहा। सुग्रीव को भूमि पर बैठे हुए देखकर श्रीराम ने कहना प्रारम्भ किया—

धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते।
विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम॥ १४॥

हे कपिश्रेष्ठ! जो राजा अपने समय का विभाग कर धर्म-अर्थ और काम सम्बन्धी कार्य करता है वही राजा राज्य करने योग्य होता है।

हित्वा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते॥ १५॥

जो राजा धर्म और अर्थ का परित्याग कर केवल काम का ही सेवन करता है वह वृक्ष की डाली पर सोनेवाले उस पुरुष के समान है जो पतन के पश्चात् ही उसके कटु परिणाम को समझता है।



अमित्राणां वधे युक्तो मित्राणां संग्रहे रतः।
त्रिवर्गफलभोक्ता तु राजा धर्मेण युज्यते॥ १६॥

जो राजा शत्रु के वध में तत्पर और मित्रों के संग्रह में कटिबद्ध रहता है वह राजा धर्म-अर्थ एवं काम रूपी त्रिवर्ग को भोगता है और धर्माधिकारी कहलाता है।

उद्योगसमयस्त्वेष प्राप्तः शत्रुविनाशन।
सञ्चिन्त्यतां हि पिङ्गेश हरिभिः सह मन्त्रिभिः॥ १७॥

हे शत्रुसंहारक वानरराज! यह उद्योग काल आ पहुँचा है, अतः आप अपने वानर मन्त्रियों के साथ इस विषय पर विचार-विमर्श करो।

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामं वचनमब्रवीत्।
कृतं न प्रतिकुर्याद्यः पुरुषाणां स दूषकः॥ १८॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर सुग्रीव बोला—जो उपकार के बदले में प्रत्युपकार नहीं करता वह मनुष्यों में धर्म-ध्वंसक समझा जाता है। (मैं ऐसा धर्मध्वंसक नहीं हूँ।)

एते वानरमुख्याश्च शतशः शत्रुसूदन।
प्राप्ताश्चादाय बलिनः पृथिव्यां सर्ववानरान्॥ १९॥

हे शत्रुञ्जय! ये सैकड़ों मुख्य वानरवीर पृथिवी के समरदुर्जय सैनिकों को साथ लेकर यहाँ आये हैं।

ते त्वामभिगमिष्यन्ति राक्षसं ये सबान्धवम्।
निहत्य रावणं संख्ये ह्यानयिष्यन्ति मैथिलीम्॥ २०॥

हे राजन्! ये सब सीता की खोज में जायेंगे। ये संग्राम में सपरिवार रावण को मारकर मैथिली को आपके पास ले आयेंगे।

➤ एकत्रिंशः सर्गः ➤ (३१)

सुग्रीव द्वारा वानरों को सीता-अन्वेषण के लिए भेजना—

इति ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत्॥ १॥

वानर सुग्रीव के ऐसा कहने पर दशरथनन्दन श्रीराम ने सुग्रीव को गले लगाकर यह कहा—

ज्ञायतां मम वैदेही यदि जीवति वा न वा।
स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन् वसति रावणः॥ २॥

हे महामति! सबसे पहले तो इस बात का पता लगाना है कि सीता जीवित भी है या नहीं। तत्पश्चात् उस देश का पता लगाना है जहाँ रावण रहता है।

अधिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च।
प्राप्तकालं विधास्यामि तस्मिन् काले सह त्वया॥ ३॥

सीता के जीवित होने और रावण का पता लग जाने पर मैं तुम्हारे साथ मिलकर समयानुकूल कार्य का निश्चय करूँगा।

नाहमस्मिन् प्रभुः कार्ये वानरेश न लक्ष्मणः।
त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर॥ ४॥

हे वानरेश! सीता के अन्वेषण-कार्य में न मैं समर्थ हूँ और न लक्ष्मण। हे कपीश्वर! यह कार्य तुम्हीं को करना है और इस कार्य में तुम्हारी ही क्षमता है।

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो विनतं नाम यूथपम्।
अब्रवीद् रामसान्निध्ये लक्ष्मणस्य च धीमतः॥ ५॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर सुग्रीव ने महामति राम और लक्ष्मण के समक्ष विनत नामक वानर से कहा—

सोमसूर्यात्मजैः सार्धं वानरैर्वानरोत्तम।
अधिगच्छ दिशं पूर्वां सशैलवनकाननाम्॥ ६॥

हे वानरोत्तम! चन्द्र और सूर्य के समान सौम्य एवं प्रतापी वानरों को साथ लेकर तुम अनेक पर्वतों एवं वनोंवाली पूर्व दिशा की ओर जाओ।

तत्र सीतां च वैदेहीं निलयं रावणस्य च।
मार्गध्वं गिरिशृङ्गेषु वनेषु च नदीषु च॥ ७॥

पूर्व दिशा में पर्वत शिखरों पर, वनों और नदियों को ढूँढ़ते हुए विदेहराजकुमारी सीता का और रावण के निवास-स्थान का पता लगाओ।

अधिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च।
मासे पूर्णे निवर्तध्वमुदयं प्राप्य पर्वतम्॥ ८॥

देखो, सीता को खोजते हुए उदयाचल तक जाओ और सीता तथा रावण का पता लगाकर एक मास के भीतर लौट आओ।

ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् वध्यो भवेन्मम।
सिद्धार्थाः सन्निवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम्॥ ९॥

एक मास से अधिक समय मत लगाना। जो इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा वह प्राणदण्ड का अधिकारी होगा। सावधान! सीता का पता लगाकर और सफल मनोरथ होकर ही लौटना।

➤ द्वात्रिंशः सर्गः ➤ (३२)

दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशा में वानरों को भेजना—

ततः प्रस्थाप्य सुग्रीवस्तन्महद्वानरं बलम्।
दक्षिणां प्रेषयामास वानरानभिलक्षितान्॥ १॥

कपिराज सुग्रीव ने उस विशाल वानरी सेना को पूर्व दिशा में भेजकर, कार्यसाधन में परीक्षित वानरों को दक्षिण दिशा में भेजा।

नीलमग्निसुतं चैव हनुमन्तं च वानरम्।
पितामहसुतं चैव जाम्बवन्तं महाबलम्॥ २॥
गजं गवाक्षं गवयं सुषेणवृषभं तथा।
मैन्दं च द्विविदं चैव विजयं गन्धमादनम्॥ ३॥
अङ्गदप्रमुखान् वीरः कपिगणेश्वरः।
वेगविक्रमसम्पन्नान् संदिदेश विशेषवित्॥ ४॥

उस दल में अग्निपुत्र नील, वानरश्रेष्ठ हनुमान्, अत्यन्त पराक्रमी पितामह-पुत्र जाम्बवान, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, मैन्द, द्विविद, विजय, गन्धमादन, अंगद आदि प्रमुख वानर वीरों को—जो गति, वेग और पराक्रम सम्पन्न थे, सब देशों को विशेष रूप से जाननेवाले कपिराज सुग्रीव ने यह संदेश दिया—

यस्तु मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्टा सीतेति वक्ष्यति।
मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति॥ ५॥

जो कोई व्यक्ति एक मास के भीतर लौटकर सब से पहले यह कहेगा कि—"मैंने सीता को देखा है"—वह मेरे ही समान वैभव पाकर अनेक प्रकार के भोगों और सुखों का उपभोग करता हुआ विहार करेगा।

ततः प्रियतरो नास्ति मम प्राणाद्विशेषतः।
कृतापराधो बहुशो मम बन्धुर्भविष्यति॥ ६॥

उस सीता के सन्देश-वाहक से बढ़कर मेरा और कोई प्राण-प्रिय न होगा अनेक अपराध करने पर भी वह मेरा बन्धु ही होगा।[1]

मरीचिपुत्रान्मारीचानर्चिर्मालान्महाबलान्।
ऋषिपुत्रांश्च तान् सर्वान् प्रतीचीमादिशद्दिशम्॥ ७॥

(उस दल को दक्षिण दिशा में भेज सुग्रीव ने) महर्षि मरीचि के पुत्रों को जिन्होंने सुन्दर मालाएँ धारण की हुई थीं और जो महाबलवान् थे—उन सभी ऋषिपुत्रों को पश्चिम दिशा में जाने का आदेश दिया और कहा—

द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां कपीनां कपिसत्तमाः।
[2]सुषेणप्रमुखा यूयं वैदेहीं परिमार्गत॥ ८॥

हे वीर सैनिको! तुम दो सहस्र सैनिकों को अपने साथ लेकर सुषेण के नेतृत्व में जनकनन्दिनी सीता को ढूँढ़ो।

---

१. कपिराज सुग्रीव ने अपनी इस प्रतिज्ञा को उस समय अक्षरशः पूर्ण किया था जब वानरगण सीता का पता लगा कर किष्किन्धा लौटे और सुग्रीव के अतिप्रिय मधुवन नामक उद्यान का विध्वंस किया था।

२. यह सुषेण तारा का पिता था।



अस्तं पर्वतमासाद्य पूर्णे मासे निवर्तत।
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम॥ ९॥

तुम लोग अस्ताचल तक जाकर एक मास पूरा होते-होते लौट आना। एक मास से अधिक मत लगाना। जो एक मास से अधिक समय लगायेगा वह प्राणदण्ड का अधिकारी होगा।

ततः सन्दिश्य सुग्रीवः श्वशुरं पश्चिमां दिशम्।
वीरं शतबलिं नाम वानरं वानरर्षभः॥ १०॥
उवाच राजा धर्मज्ञः सर्ववानरसत्तमम्।
वैवस्वतसुतैः सार्धं प्रतिष्ठस्व स्वमन्त्रिभिः॥ ११॥

अपने श्वसुर सुषेण को पश्चिम दिशा में भेजकर धर्मज्ञ राजा सुग्रीव ने वानरों में सर्वोत्तम शतबलि नामक वानरश्रेष्ठ से कहा—तुम सूर्यपुत्रों और अपने मन्त्रियों सहित यात्रा आरम्भ करो—

दिशं ह्युदीचीं विक्रान्तां हिमशैलावतं सकाम्।
सर्वतः परिमार्गध्वं रामपत्नीमनिन्दिताम्॥ १२॥

तुम हिम-पर्वतों से अलंकृत रमणीय उत्तर दिशा की ओर जाओ और उस दिशा में सर्वत्र श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी अनिन्दिता सीता को पता लगाओ।

अस्मिन् कार्ये विनिर्वृत्ते कृते दाशरथेः प्रिये।
ऋणान्मुक्ता भविष्यामः कृतार्थार्थविदां वराः॥ १३॥

हे विदांवरो! (सफलता-प्राप्ति के उपायों को जानने में श्रेष्ठजनों) श्रीराम का यह प्रियकार्य पूरा कर हम लोग उनके ऋण से मुक्त हो जायेंगे और कृतकृत्य हो जायेंगे।

कृतं हि प्रियमस्माकं राघवेण महात्मना।
तस्य चेत् प्रतिकारोऽस्ति सफलं जीवितं भवेत्॥ १४॥

श्रीराम ने हम लोगों का अत्यन्त प्रियकार्य किया है। यदि हम लोग प्रत्युपकार द्वारा उनका कुछ भी बदला चुका सकें तो हमारा जीवन सफल हो।

अर्थिनः कार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपि यश्चरेत्।
तस्य स्यात् सफलं जन्म किं पुनः पूर्वकारिणः॥ १५॥

अनुपकारी व्यक्ति का भी यदि कोई कार्य आ जाये तो उसकी भी सहायता करनी चाहिए। ऐसे सहायक व्यक्ति का जन्म सफल माना जाता है। जिसने अपने उपकार द्वारा पहले ही उपकृत कर दिया हो उसकी सहायता करने का तो कहना ही क्या?

एतां बुद्धि समास्थाय दृश्यते जानकी यथा।
तथा भवद्भिः कर्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः॥ १६॥

आप लोग मेरा प्रिय चाहनेवाले एवं हितैषी हैं, अतः इन बातों को सोच-समझकर ऐसा प्रयत्न कीजिए जिससे सीताजी का पता लग जाए।

विशेषेण तु सुग्रीवो हनुमत्यर्थमुक्तवान्।
स हि तस्मिन् हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थेऽर्थसाधने॥ १७॥

सीतान्वेषणार्थ सब दिशाओं में वानरों की नियुक्ति करके सुग्रीव ने हनुमान् से कुछ विशेष बातें कहीं क्योंकि उन्हें कपिश्रेष्ठ हनुमान् के ऊपर ही कार्यसिद्धि का पूर्ण विश्वास था।

गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे।
पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महात्मनः॥ १८॥

हे वीर महाकपे! गति, वेग, तेज और फुर्ती में तुम अपने पिता महात्मन् पवन के सदृश ही हो।

त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित॥ १९॥

हे नीतिशास्त्रविशारद हनुमान्! तुममें बल, बुद्धि, पराक्रम, देश एवं कालानुसार कार्य करने की क्षमता तथा नीति—सब कुछ है।

तेजसा वापि ते भूतं समं भुवि न विद्यते।
तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवोपपादय॥ २०॥

तुम्हारे समान तेजस्वी पुरुष इस भूमण्डल पर अन्य कोई नहीं है, अतः हे वीर! तुम ऐसा उद्योग करना जिससे सीता का पता लग जाए।

ततः कार्यसमासङ्गमवगम्य हनूमति।
विदित्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः॥ २१॥

सीतान्वेषण-कार्य का भार हनुमान् को ही दिया जा रहा है यह जानकर श्रीराम हनुमान् की अद्‌भुत कार्यशक्ति का मन-ही-मन विचार करने लगे।



सर्वथा निश्चतार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः।
निश्चितार्थकरश्चापि हनुमान् कार्यसाधने॥ २२॥

राजा सुग्रीव को कार्य-सिद्धि के लिए हनुमान् पर पूर्ण विश्वास है। उधर हनुमान् को भी अपने द्वारा कार्य सिद्ध होने में पूर्ण विश्वास है।

ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम्।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः॥ २३॥

हनुमान् के द्वारा ही कार्य सिद्ध होगा ऐसा सोचकर शत्रुहन्ता श्रीराम ने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजकुमारी सीता को विश्वास दिलाने के लिए अपने नाम से अङ्कित अँगूठी हनुमान् को दी।

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति॥ २४॥

अँगूठी देकर श्रीराम ने कहा—हे कपिश्रेष्ठ! इस अँगूठी को देख, जनकनन्दिनी सीता जान जायेंगी कि तुम मेरे पास से आये हो और तुम पर विश्वास कर वह निःशंक होकर तुमसे मिलेगी।

व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः।
सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे॥ २५॥

हे वीर! तुम्हारा उद्योग, बल एवं बुद्धिपूर्ण पराक्रम और सुग्रीव का दृढ़तापूर्ण सन्देश—ये सब बातें तुम्हारी कार्य-सिद्धि को सूचित कर रही हैं।

स तद् गृह्य हरिश्रेष्ठः स्थाप्य मूर्ध्नि कृताञ्जलिः।
वन्दित्वा चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगोत्तमः॥ २६॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान् उस अँगूठी को ग्रहणकर, उसे अपने सिर पर रख तदनन्तर हाथ जोड़कर श्रीराम के चरणों में प्रणाम कर वहाँ से चल दिए।

≺ त्रयस्त्रिंशः सर्गः ≻ (३३)

तीन दिशाओं की मण्डलियों का निराश लौटना, अङ्गद-हनुमान् की मण्डली का सीता को ढूँढ़ना—

दर्शनार्थं तु वैदेह्याः सर्वतः कपियूथपाः।
व्यादिष्टाः कपिराजेन यथोक्तं जग्मुरञ्जसा॥ १॥

सीता को ढूँढ़ने के लिए वानरराज सुग्रीव ने वानर सेनापतियों को जो आदेश दिया था उस आदेशानुसार वे सभी वेगपूर्वक अपनी-अपनी निर्दिष्ट दिशाओं को चल दिये।

सरांसि सरितः कक्षानाकाशं नगराणि च।
नदीदुर्गांस्तथा शैलान् विचिन्वन्ति समन्ततः॥ २॥

वे वानर वीर सरोवरों, नदियों, लताकुञ्जों, आकाश, नगरों, पर्वतों ओर नदी-दुर्गवाले प्रदेशों को खोजने लगे।

विचित्य दिवसं सर्वे सीताधिगमने धृताः।
समायान्ति स्म मेदिन्यां निशाकालेषु वानराः॥ ३॥

सीता को ढूँढ़ निकालने में दृढ़निश्चयी वे लोग दिनभर भिन्न-भिन्न स्थानों को खोजते हुए रात्रि में एक निश्चित स्थान पर एकत्र हो जाते थे।

तदहः प्रथमं कृत्वा मासे प्रस्रवणं गताः।
कपिराजेन सङ्गम्य निराशाः कपियूथपाः॥ ४॥

इस प्रकार प्रस्रवण गिरि से प्रस्थान करने के दिन से आरम्भ करके एक मास तक सीता की खोज करने के पश्चात् वे सब निराश एवं हताश होकर सुग्रीव के पास लौट आए।

सह ताराङ्गदाभ्यां तु गत्वा स हनुमान् कपिः।
सुग्रीवेण यथोद्दिष्टं तं देशमुपचक्रमे॥ ५॥

सुग्रीव के आदेशानुसार हनुमान् एवं तार अङ्गद को साथ लेकर दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े।

स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः।
विचिनोति स्म विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च॥ ६॥

हनुमान् उन वानरश्रेष्ठों के साथ सीता को खोजते हुए बहुत दूर पहुँचकर विन्ध्याचल की घाटियों की गहन-गुफाओं में सीताजी को खोजने लगे।



अन्वेषमाणास्ते सर्वे वानराः सर्वतो दिशम्।
न सीतां ददृशुर्वीरा मैथिलीं जनकात्मजाम्॥ ७॥

उस दिशा में सर्वत्र अच्छी प्रकार ढूँढ़ने पर भी उन वीर वानरों को मिथिला राजकुमारी सीता कहीं भी दिखाई नहीं पड़ीं।

ते विचित्य गताः खिन्ना निषेदुर्दीनमानसाः।
अथाङ्गदस्तदा सर्वान् वानरानिदमब्रवीत्॥ ८॥

जब वे सभी वानर ढूँढ़-ढूँढ़ कर थक गये और दुःखी तथा उदास होकर बैठ गये तब अङ्गद ने उन वानरों से कहा—

अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयः।
कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद्ब्रवीम्यहम्॥ ९॥

खिन्नता का अभाव, दक्षता=चातुर्य और मन का न हारना—ये कार्य-सिद्धि के साधन कहे जाते हैं, अतः मैं आप लोगों से कहता हूँ—

अद्यापि तद्वनं दुर्गं विचिन्वन्तु वनौकसः।
खेदं त्यक्त्वा पुनः सर्वैर्वनमेतद्विचीयताम्॥ १०॥

हे वनवासी वीरो! तुम लोग खेद का परित्याग कर पुनः इस वन को तथ दुर्गम स्थानों को भली-भाँति ढूँढ़ो।

अवश्यं क्रियमाणस्य दृश्यते कर्मणः फलम्।
अलं निर्वेदमागम्य नहि नोन्मीलनं क्षमम्॥ ११॥

भली-भाँति किए हुए कार्य का फल अवश्य मिलता है, अतः हिम्मत हारकर, खिन्न होकर हाथ-पर-हाथ रखकर चुप-चाप बैठ जाना उचित नहीं।

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा वानरास्ते महाबलाः।
विन्ध्याकाननसङ्कीर्णां विचेरुर्दक्षिणां दिशम्॥ १२॥

अङ्गद के इन वचनों को सुनकर वे महाबली वानर एक बार फिर विन्ध्याचल के जंगलों से व्याप्त दक्षिण दिशा में घूम-फिरकर सीता को खोजने लगे।

❮ चतुस्त्रिंशः सर्गः ❯ (३४)

गुफा में प्रवेश एवं तापसी से भेंट—

विचिन्वन्तस्ततस्तत्र ददृशुर्विवृत्तं बिलम्।
दुर्दर्शमतिघोरं च दुर्विगाहं च सर्वशः॥ १॥

खोजते-खोजते उन्हें वहाँ एक अत्यन्त विशाल बिल=भूलभुलैयाँ दिखाई दी। वह गुफा दुष्प्रवेश्य थी और देखने में भी भयंकर लगती थी।

ततः पर्वतकूटाभो हनुमान् पवनात्मजः।
अब्रवीद्वानरान् सर्वान् कान्तारवनकोविदः॥ २॥

उस भूलभुलैयाँ अथवा गुफा को देखकर विशालकाय पवनपुत्र हनुमान् जो इन सम और विषम दुर्गमनीय स्थानों के जानकार थे, अपने साथियों से बोले—

गिरिजालावृतान् देशान् मार्गित्वा दक्षिणां दिशम्।
वयं सर्वे परिश्रान्ता न च पश्याम मैथिलीम्॥ ३॥

दक्षिण दिशा की पर्वतमालाओं से घिरे हुए सभी स्थानों को खोजकर हम सभी लोग थककर चूर हो गये, परन्तु मिथिलेश-कुमारी सीता का दर्शन नहीं कर सके।

अस्माच्चापि बिलाद्धंसाः क्रौञ्चाश्च सह सारसैः।
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतन्ति स्म सर्वतः॥ ४॥
नूनं सलिलवानत्र कूपो वा यदि वा ह्रदः।
इत्युक्त्वा तद्बिलं सर्वे विवशुस्तिमिरावृतम्॥ ५॥

इस विशाल बिल से हंस, सारसों के साथ क्रौञ्च पक्षी और चक्रवाक पक्षी जल से भीगे हुए झुण्ड-के-झुण्ड निकल रहे हैं। इससे निश्चय होता है कि इस गुफा में या तो जलपूरित कोई कुआँ है अथवा तालाब है। हनुमान्जी के ऐसा कहने पर वे सब वानर उस अन्धकार से आच्छादित बिल में प्रविष्ट हो गये।

ददृशुस्तत्र हरयो गृहमुख्यानि सर्वशः।
पुष्पितान् फलिनो वृक्षान् प्रवालमणिसन्निभान्॥ ६॥

उस बिल में प्रविष्ट होकर वानरों ने वहाँ चारों



ओर बड़े-बड़े भवन देखे। वहाँ उन्होंने मूँगों और मणियों की भाँति फूल एवं फलवाले वृक्ष भी देखे।

महार्हाणि च यानानि ददृशुस्ते समन्ततः।
हैमराजतकांस्यानां भाजनानां च सञ्चयान्॥ ७॥

बहुमूल्य सवारियाँ भी चारों ओर खड़ी दीख पड़ती थीं तथा सोने-चाँदी एवं काँसे के बर्तनों के वहाँ ढेर लगे हुए थे।

अगरूणां च दिव्यानां चन्दनानां च सञ्चयान्।
शुचीन्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च॥ ८॥

अगर एवं दिव्य चन्दनों के ढेर लगे हुए थे। स्थान-स्थान पर शुद्ध-पवित्र भोजन तथा मूलों और फलों के ढेर लगे हुए थे।

महार्हाणि च पानानि मधूनि रसवन्ति च।
दिव्यानामम्बराणां च महार्हाणां च सञ्चयान्॥ ९॥

यत्र-यत्र मूल्यवान् पेय पदार्थ और रसीले, मधुर फल भी रखे थे। वहाँ अति सुन्दर एवं बहुमूल्य पहनने के वस्त्रों का भी अच्छा सञ्चय था।

तत्र तत्र विचिन्वन्तो बिले तस्मिन् महाबलाः।
ददृशुर्वानराः शूराः स्त्रियं काञ्चिददूरतः॥ १०॥

इस बिल में इधर-उधर ढूँढ़ते हुए उन महाबली वानरों ने समीप ही एक तपस्विनी स्त्री को देखा।

तां दृष्ट्वा भृशसंत्रस्ता ज्वलन्तीमिव तेजसा।
पप्रच्छ हनुमांस्तत्र कासि त्वं कस्य वा बिलम्॥ ११॥

अपने तेज से अग्नि के समान देदीप्यमान उस स्त्री को देखकर वानर भयभीत हो गये। तदनन्तर हनुमान् ने उससे पूछा—तुम कौन हो? और यह बिल किसका है?

➤ पञ्चत्रिंशः सर्गः ➤ (३५)

स्वयंप्रभा द्वारा वानरों का आतिथ्य और वानरों का बिल में प्रविष्ट होने का कारण बताना—

एवमुक्ता हनुमता तापसी धर्मचारिणी।
प्रत्युवाच हनूमन्तं सर्वभूतहिते रता॥ १॥

हनुमान्‌जी के ऐसा पूछने पर सब प्राणियों पर दया करनेवाली वह धर्मचारिणी तापसी हनुमान् से कहने लगी—

मयो नाम महातेजा मायावी दानवर्षभः।
तेनेदं निर्मितं सर्वं मायया काञ्चनं वनम्॥ २॥

महातेजस्वी मय नामक एक अति चतुर शिल्पी था। उसी मय ने अपने बुद्धि-चातुर्य से स्वर्ण के समान प्रतीत हानेवाले इस वन का निर्माण किया था।

दुहिता मेरुसावर्णेरहं तस्याः स्वयंप्रभा।
किं कार्यं कस्य वा हेतोः कान्ताराणि प्रपश्यथ॥ ३॥

मैं मेरुसावर्णी की पुत्री स्वयंप्रभा हूँ। अब आप लोग बतलाओ कि आपके यहाँ आने को कारण क्या है? इस निर्जन वन में आप लोग किस लिए घूम रहे हैं?

इमान्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च।
भुक्त्वा पीत्वा च पानीयं सर्वं मे वक्तुमर्हथ॥ ४॥

पहले आप लोग खाने-पीने योग्य फल-मूल आदि को अच्छे प्रकार खाकर तथा जल पीकर पश्चात् अपने यहाँ आने का समस्त वृत्तान्त मुझसे कहो।

अथ तानब्रवीत्सर्वान् विश्रान्तान् हरिपुङ्गवान्।
इदं वचनमेकाग्रा तापसी धर्मचारिणी॥ ५॥

जब वे सब पराक्रमी वानरश्रेष्ठ खा-पीकर विश्राम कर चुके तब तापसी धर्मचारिणी स्वयंप्रभा ने एकाग्रचित्त होकर उनसे कहा—

वानरा यदि वः खेदः प्रणष्टः फलभक्षणात्।
यदि चैतन्मया श्राव्यं श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम्॥ ६॥

हे वानरो! यदि फल खाकर तुम्हारी थकावट दूर हो गई हो और यदि यह बात मेरे सुनने योग्य हो तो आप लोग मुझे सुनाएँ। मैं आप लोगों का वृत्तान्त



सुनना चाहती हूँ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान् मारुतात्मजः।
आर्जवेन यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ ७॥

उस तापसी के ऐसे वचन को सुनकर पवनपुत्र हनुमान्जी नम्रतापूर्वक अपने आगमन का सम्पूर्ण वृत्तान्त यथार्थ रूप में कहने लगे।

रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया॥ ८॥

महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम पिता की आज्ञा से वन में प्रविष्ट हुए। उनके साथ उनके छोटे भाई लक्ष्मण और उनकी धर्मपत्नी सीता भी थी।

तस्य भार्या जनस्थानाद्रावणेन हृता बलात्।
वीरस्तस्य सखा राज्ञः सुग्रीवो नाम वानरः॥ ९॥

जनस्थान से उनकी भार्या सीता को रावण बलपूर्वक उठाकर ले गया। उन श्रीराम के मित्र राजा सुग्रीव हैं, जो बड़े वीर हैं।

राजा वानरमुख्यानां येन प्रस्थापिता वयम्।
विचित्य तु वयं सर्वे समग्रां दक्षिणां दिशम्॥ १०॥
इदं प्रविष्टाः सहसा बिलं तिमिरसंवृतम्।
एतन्नः कार्यमेतेन कृत्येन वयमागताः॥ ११॥

वानरों के राजा सुग्रीव ने हमें सीता को ढूँढ़ने के लिए भेजा है। दक्षिण दिशा के सम्पूर्ण वन और पर्वतों को खोजते हुए हम सहसा इस अन्धकार से आच्छादित भूलभुलैयाँ में प्रविष्ट हो गये। बस यही हमारा कार्य है और इसी कार्य को करने के लिए आये हैं।

शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मः सर्वे वै धर्मचारिणि।
यः कृतः समयोऽस्माकं सुग्रीवेण महात्मना॥ १२॥
स च कालो ह्यतिक्रान्तो बिले च परिवर्तताम्।
सा त्वमस्माद् बिलाद् घोरादुत्तारयितुमर्हसि॥ १३॥

हे धर्मचारिणि! अब हम सब तेरी शरण में हैं। महात्मा सुग्रीव ने इस कार्य के लिए जो समय निश्चित किया था वह समय तो इस बिल में रहते-रहते ही पूरा हो गया, अतः अब आप हमें किसी प्रकार इस बिल से बाहर निकाल दें।

एवमुक्ता हनुमता तापसी वाक्यमब्रवीत्।
जीवता दुष्करं मन्ये प्रविष्टेन निवर्तितुम्॥ १४॥

हनुमान्जी के ऐसा कहने पर तापसी ने कहा—इस बिल में प्रवेश करके जीवित अवस्था में बाहर निकल जाना बहुत कठिन है। (फिर भी)

निमीलयत चक्षूंषि सर्वे वानरपुङ्गवाः।
न हि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलितलोचनैः॥ १५॥

आप सभी वानरश्रेष्ठ अपनी आँखें बन्द कर लें क्योंकि बिना नेत्र बन्द किये इस बिल से कोई नहीं निकल सकता।

वानरास्तु महात्मानो हस्तरुद्धमुखास्तदा।
निमेषान्तरमात्रेण बिलादुत्तारितास्तया॥ १६॥

जब उन महात्मा वानरों ने अपनी आँखें अपने हाथों से ढक लीं तब उस तपस्विनी ने उन सब वानरों को एक पल में ही बाहर पहुँचा दिया।

ततस्तान् वानरान् सर्वांस्तापसी धर्मचारिणी।
निःसृतान् विषमात्तस्मात्समाश्वास्येदमब्रवीत्॥ १७॥

उस भयंकर भूलभुलैयाँ से निकले हुए उन सभी वानरों को आश्वासन प्रदान करते हुए धर्मचारिणी तापसी स्वयंप्रभा ने कहा—

एष विन्ध्यो गिरिः श्रीमान् नानाद्रुमलताकुलः।
एष प्रस्रवणः शैलः सागरोऽयं महोदधिः॥ १८॥

नाना प्रकार के वृक्ष-लता आदि से शोभायमान यह विन्ध्याचल पर्वत है और अगाध जलराशि से परिपूर्ण यह समुद्र है।

स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यमि भवनं वानरर्षभाः।
इत्युक्त्वा तद् बिलं श्रीमत्प्रविवेश स्वयंप्रभा॥ १९॥

आप लोगों की यात्रा मङ्गलमय हो। मैं अब अपने भवन को जाऊँगी। ऐसा कहकर तापसी स्वयंप्रभा उस रमणीय गुफा में प्रविष्ट हो गई।

ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम्।
अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिरावृतम्॥ २०॥

बिल से बाहर निकलने पर उन वानरों ने विकराल



तरङ्गित, भयंकर गर्जन करते हुए अपार जलराशि से परिपूर्ण उस समुद्र को देखा।

मयस्य मायाविहितं गिरिदुर्गं विचिन्वताम्।
तेषां मासो व्यतिक्रान्तो यो राज्ञा समयः कृतः ॥ २१ ॥

मय की अद्भुत कारीगरी से रचित उस गिरिगुहा में और गिरि तथा दुर्गम स्थानों को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते ही राजा सुग्रीव द्वारा निर्दिष्ट एक मास का समय समाप्त हो गया।

विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे सम्प्रपुष्पितपादपे।
उपविश्य महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तदा ॥ २२ ॥

अतः वे सब महात्मा वानर विन्ध्यपर्वत की तलहटी में पुष्पों से परिपूर्ण वृक्षों के नीचे बैठकर भविष्य के कार्य के सम्बन्ध में चिन्तामग्न हो गये।

ततस्तान् कपिवृद्धांस्तु शिष्टांश्चैव वनौकसः।
युवराजो महाप्राज्ञ अङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥

उन सभी को चिन्तामग्न देखकर महाबुद्धिमान् युवराज अङ्गद बड़े-बूढ़े और शिष्ट वानरों से बोले—

वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्याव्यवस्थिताः।
प्रस्थिताः सोऽपि चातीतः किमतः कार्यमुत्तरम् ॥ २४ ॥

देखो, हम लोग आश्विन मास में सीता के अन्वेषण की प्रतिज्ञा करके राजधानी से निकले थे, वह सब समय व्यतीत हो गया है। अब हम लोगों को आगे क्या करना चाहिए?

इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः।
हरिराजस्य सन्देशमकृत्वा कः सुखी भवेत् ॥ २५ ॥

अभी तक हम लोग अपने कार्य में असफल रहे हैं, अतः हमारी मृत्यु निश्चित है, क्योंकि कपिराज सुग्रीव की आज्ञा की अवहेलना करके कौन सुखी रह सकता है?

तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः स्वामीभावे व्यवस्थितः।
न क्षमिष्यति नः सर्वानपराधकृतो गतान् ॥ २६ ॥

सुग्रीव का स्वभाव अत्यन्त उग्र है, फिर इस समय वे हम लोगों के राजा हैं, अतः सीता की खोज किए बिना लौटनेवाले हम अपराधियों के अपराध को वे कभी भी क्षमा नहीं करेंगे।

तस्मिन्नतीते काले तु सुग्रीवेण कृते स्वयम्।
प्रायोपवेशनं युक्तं सर्वेषां च वनौकसाम् ॥ २७ ॥

अतः सुग्रीव द्वारा निर्धारित अवधि के बीत जाने पर हम सब वानरों के लिए यही उचित है कि हम खाना-पीना छोड़कर अपने प्राण त्याग दें।

त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च धनानि च गृहाणि च।
ध्रुवं नो हिंसते राजा सर्वान् प्रतिगतानितः ॥ २८ ॥

पुत्र, स्त्री, धन-धान्य और गृह आदि की मोह-ममता को हमें छोड़ देना चाहिए, क्योंकि जहाँ से लौटने पर असफल मनोरथ हमें राजा सुग्रीव अवश्य प्राणदण्ड देगा। (वहाँ मरने की अपेक्षा यहाँ मरना अधिक श्रेष्ठ है।)

न चाहं यौवराज्येन सुग्रीवेणाभिषेचितः।
नरेन्द्रेणाभिषिक्तोऽस्मि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ २९ ॥

युवराज पद का अधिकारी होने पर भी राजा सुग्रीव ने मुझे युवराज पद पर अभिषिक्त नहीं किया। मैं तो मर्यादा-पालक महाराज रामचन्द्र के द्वारा युवराज पद पर अभिषिक्त किया गया हूँ। (युवराज पद के लिए मैं श्रीराम का कृतज्ञ हूँ सुग्रीव का नहीं।)

स पूर्वं बद्धवैरो मां राजा दृष्ट्वा व्यतिक्रमम्।
घातयिष्यति दण्डेन तीक्ष्णेन कृतनिश्चयः ॥ ३० ॥

महाराज सुग्रीव मेरे प्रति पहले से ही वैर-बुद्धि रखते हैं, जब वे देखेंगे कि मैंने कार्य पूरा नहीं किया तब वे अवश्य ही मुझे बड़ी निष्ठुरता से मरवा डालेंगे।

किं मे सुहृद्भिर्व्यसनं पश्यद्भिर्जीवितान्तरे।
इहैव प्रायमासिष्ये पुण्ये सागररोधसि ॥ ३१ ॥

अपने इष्ट-मित्रों के सामने निन्द्य मृत्यु की अपेक्षा इस पुण्यप्रद सागर-तट पर प्राण त्याग करना मेरे लिए अधिक श्रेष्ठ है।

एतत् श्रुत्वा कुमारेण युवराजेन भाषितम्।
सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः करुणं वाक्यमब्रुवन् ॥ ३२ ॥

राजकुमार युवराज अङ्गद की इन बातों को सुनकर सब-के-सब वानर करुणापूर्ण वाणी से बोले—



तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः प्रियासक्तश्च राघवः।
अदृष्टायां च वैदेह्यां दृष्ट्वा चैव समागतान्॥ ३३॥
राघवप्रियकामार्थं घातयिष्यत्यसंशयम्।
न क्षमं चापराद्धानां गमनं स्वामिपार्श्वतः॥ ३४॥

सुग्रीव तो उग्र प्रकृति के हैं और श्रीराम अपनी प्रिया सीता में अनुरक्त हो रहे हैं। सीता को बिना देखे हुए ही हम लोगों को लौटा देखकर सुग्रीव श्रीराम को प्रसन्न करने के लिए हमें मरवा डालेंगे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, अतः अपराध करके स्वामी के समीप राजधानी में जाना हम लोगों के लिए उचित नहीं है।

इहैव सीतामन्विष्य प्रवृत्तिमुपलभ्य वा।
नो चेद् गच्छाम तं वीरं गमिष्यामो यमक्षयम्॥ ३५॥

यदि हम लोग सीता को बिना देखे अथवा उसका समाचार प्राप्त किये बिना सुग्रीव के पास लौट जायेंगे तो निश्चय ही हम सबको यमराजपुरी की ओर प्रस्थान करना पड़ेगा।

प्लवङ्गमानां तु भयार्दितानां
श्रुत्वा वचस्तार इदं बभाषे।
अलं विषादेन बिलं प्रविश्य
वसाम सर्वे यदि रोचते वः॥ ३६॥

उन भयभीत वानरों के वचन सुनकर तार ने कहा—तुम लोग दुःखी मत होओ, यदि तुम लोगों की इच्छा हो तो हम सब पुनः इस बिल में चले चलें और वहीं चल कर बस जायें।

➤ षट्त्रिंशः सर्गः ➤ (३६)

हनुमान् की भेद-नीति—

तथा ब्रुवति तारे तु ताराधिपतिवर्चसि।
अथ मेने हृतं राज्यं हनुमानङ्गदेन तत्॥ १॥

चन्द्रमा की कान्ति के समान प्रभाववाले तार के ऐसा कहने पर हनुमान्जी को लगा कि वानरों का राज्य अङ्गद के अधीन हो गया अर्थात् सब वानर अङ्गद के कहने में आ गये।

बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं चतुर्बलसमन्वितम्।
चतुर्दशगुणं मेने हनुमान् बालिनः सुतम्॥ २॥

हनुमान् ने बाली-पुत्र अङ्गद को अष्टाङ्ग बुद्धि[1] से सम्पन्न, चार प्रकार के बल[2] से युक्त और राजनीति के चौदह गुणों[3] से समलंकृत माना।

---

१. अष्टाङ्ग आदि—

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥

१. सुनने की इच्छा २. सुनना ३. समझना ४. धारण करना ५. तर्क-वितर्क से छानबीन करना ६. अभिप्राय को जानना ७. विज्ञान और ८. तत्त्वज्ञान—ये आठ बुद्धि के गुण हैं।

२. चार प्रकार का बल—

१. साम २. दान ३. भेद ४. दण्ड। अथवा—

१. बाहुबल २. मनोबल ३. उपायबल और ४. बन्धु-बल।

३. चौदह गुणः—

देशकालज्ञता दार्ढ्यं सर्वक्लेशसहिष्णुता।
सर्वविज्ञानता दाक्ष्यमूर्जः संवृत्तमन्त्रता॥
अविसंवादिता शौर्यं भक्तिज्ञत्वं कृतज्ञता।
शरणागतवात्सल्यममर्षित्वमचापलम्॥

१. देशकाल का ज्ञान २. दृढ़ता ३. कष्टसहिष्णुता ४. सर्वविज्ञानता ५. दक्षता ६. उत्साह ७. मन्त्रगुप्ति ८. एकवाक्यता ९. शूरता १०. भक्तिज्ञान ११. कृतज्ञता १२. शरणागतवत्सलता १३. अमर्षित्व= अधर्म के लिए असहिष्णुता और १४. अचपलता=गम्भीरता।



भर्तुरर्थे परिश्रान्तं सर्वशास्त्रविदां वरम्।
अभिसन्धातुमारेभे हनुमानङ्गदं ततः॥ ३॥

सर्वशास्त्र-विशारद हनुमान् ने अपने स्वामी के कार्य में शिथिल अङ्गद को श्रीराम के कार्य में जुटाने के लिए उद्योग आरम्भ किया—

स चतुर्णामुपायानां तृतीयमुपवर्णयन्।
भेदयामास तान् सर्वान् वानरान् वाक्यसम्पदा॥ ४॥

वाणी के धनी हनुमान् ने अपनी वाक्-चातुरी से साम आदि चार उपायों में से तृतीय उपाय भेद का अवलम्बन करते हुए उन सभी वानरों में भेद उत्पन्न कर दिया।

तेषु सर्वेषु भिन्नेषु ततोऽभीषयदङ्गदम्।
भीषणैर्बहुभिर्वाक्यैः कोपोपायसमन्वितैः॥ ५॥

वानरों के अङ्गद से पृथक् हो जाने पर हनुमान्‌जी ने दण्डनीति का आश्रय लेकर अनेक भयप्रदवाक्यों से अङ्गद को भय दिखलाते हुए कहा—

त्वं समर्थतरः पित्रा युद्धे तारेय वै ध्रुवम्।
दृढं धारयितुं शक्तः कपिराज्यं यथा पिता॥ ६॥

हे तारा-पुत्र अंगद! युद्ध करने में तुम अपने पिता से भी बढ़-चढ़कर सामर्थ्य रखते हो इसमें कोई सन्देह नहीं। कपियों के राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त होने पर तुम अपने पिता की भाँति ही राज्य कर सकते हो।

नित्यमस्थिरचित्ता हि कपयो हरिपुङ्गव।
नाज्ञाप्यं विषहिष्यन्ति पुत्रदारान् विना त्वया॥ ७॥

हे वानरश्रेष्ठ! इन वानरों की चित्त-वृत्ति अस्थिर है। आज ये आपकी आज्ञा मानते हैं, परन्तु अपने पुत्रों और स्त्रियों से रहित होकर ये आपकी आज्ञाओं का पालन नहीं करेंगे।

त्वां नैते ह्यनुरज्येयः प्रत्यक्षं प्रवदामि ते।
यथायं जाम्बवान्नीलः सुहोत्रश्च महाकपिः॥ ८॥
न ह्यहं न इमे सर्वे सामदानादिभिर्गुणैः।
दण्डेन वा त्वया शक्याः सुग्रीवादपकर्षितुम्॥ ९॥

मैं तुमसे इन सबके मुँह पर ही स्पष्ट कहता हूँ कि ये लोग अपनी स्त्रियों और पुत्रों को छोड़ तुम्हारे ऊपर कभी अनुरागवान् नहीं होंगे। जाम्बवान्, नील, महाकपि सुहोत्र और मुझको तथा इन समस्त वानरों के मन को तुम साम, दान, भेद, दण्ड द्वारा सुग्रीव की ओर से कभी नहीं फेर सकोगे।

अवस्थाने यदैव त्वमासिष्यसि परन्तप।
तदैव हरयः सर्वे त्यक्ष्यन्ति कृतनिश्चयाः॥ १०॥

हे परन्तप! तुम जैसे ही हम सबसे पृथक् होकर इस बिल में अपना निवास-स्थान बनाओगे वैसे ही तुम्हारा साथ देने का वचन देनेवाले ये सब वानर तुम्हें छोड़कर चल देंगे।

स्मरन्तः पुत्रदाराणां नित्योद्विग्ना बुभुक्षिताः।
खेदिता दुःखशय्याभिस्त्वां करिष्यन्ति पृष्ठतः॥ ११॥

अपने पुत्र-स्त्री आदि पारिवारिक जनों के वियोग से उद्विग्न, भूख-प्यास-शयन आदि कष्ट से दुःखित ये वानर आपको पीठ दिखाकर सुग्रीव से जा मिलेंगे।

स त्वं हीनः सुहृद्भिश्च हितकामैश्च बन्धुभिः।
तृणादपि भृशोद्विग्नः स्पन्दमानाद्भविष्यसि॥ १२॥

इस प्रकार आप अपने मित्र और हितैषी बन्धुओं से रहित होकर तिनके से भी गये-बीते हो जाओगे और उद्विग्नता के कारण तुम्हारा हृदय जोर-जोर से धड़कने लगेगा।

अस्माभिस्तु गतं सार्धं विनीतवदुपस्थितम्।
आनुपूर्व्यात्तु सुग्रीवो राज्ये त्वां स्थापयिष्यति॥ १३॥

यदि आप हमारे साथ चलेंगे और विनीत भाव से सुग्रीव के समक्ष खड़े हो जायेंगे तो सुग्रीव परम्परागत वानरराज्य पर आपको ही अभिषिक्त कर देंगे।

धर्मकामः पितृव्यस्ते प्रीतिकामो दृढव्रतः।
शुचिः सत्यप्रतिज्ञश्च न त्वां जातु जिघांसति॥ १४॥

तुम्हारे चाचा सुग्रीव धर्मात्मा, दृढ़व्रत, शुद्ध-अन्तःकरणवाले और सत्यप्रतिज्ञ हैं, तुम्हारे प्रति वे स्नेह भी रखते हैं, अतः वे तुम्हारा वध कभी नहीं



करेंगे।

प्रियकामश्च ते मातुस्तदर्थं चास्य जीवितम्।
तस्यापत्यं च नास्त्यन्यत्तस्मादङ्गद गम्यताम्॥ १५॥

वे सुग्रीव तुम्हारी माता पर कृपालु हैं। यहाँ तक कि वे उसके लिए जान तक देने को तैयार हैं, फिर सुग्रीव को कोई दूसरा पुत्र भी नहीं है कि वे तुम्हें मारकर राज्य उसे दे देंगे, अतः हे अङ्गद! तुम किष्किन्धा लौट चलो।

◀ सप्तत्रिंशः सर्गः ▶ (३७)

अङ्गद का आक्रोश और प्रायोपवेश—

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम्।
स्वामिसत्कारसंयुक्तमङ्गदो वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

हनुमान्जी के विनम्र, धर्मयुक्त एवं स्वामी के प्रति सम्मान-सूचक वचनों को सुन अङ्गद ने कहा—

स्थैर्यं सत्त्वं मनः शौचमानृशंस्यमथार्जवम्।
विक्रमश्चैव धैर्यं च सुग्रीवे नोपपद्यते॥ २॥

हे हनुमन्! स्थिरता, बाह्य एवं आन्तरिक पवित्रता, दया, सरलता, वीरता और धैर्य—इनमें से कोई भी गुण सुग्रीव में दिखाई नहीं देता।

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्यां जीवतो महिषीं प्रियाम्।
धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकरोति जुगुप्सितः॥ ३॥

ज्येष्ठ भ्राता के जीवित रहने पर उसकी प्राण-प्रिया महारानी को जो धर्म से उसकी माता के समान है, को ग्रहण करता है वह अवश्य ही निन्दनीय है।

कथं स धर्मं जानीते येन भ्रात्रा महात्मना।
युद्धायाभिनियुक्तेन बिलस्य पिहितं मुखम्॥ ४॥

वह व्यक्ति धर्मात्मा कैसे कहा जा सकता है जिसने सङ्ग्राम में जाते हुए अपने भाई के द्वारा रक्षा के लिए नियुक्त होने पर भी गुफा के द्वार को बन्द कर दिया।

सत्यात्पाणिगृहीतश्च कृतकर्मा महायशाः।
विस्मृतो राघवो येन स कस्य सुकृतं स्मरेत्॥ ५॥

जिसने सत्य को साक्षी कर मैत्री की और अपने पूर्वोपकारी महायशस्वी मित्र श्रीराम को भी भूल गया तो वह और किसके उपकार को स्मरण रख सकता है?

लक्ष्मणस्य भयाद्येन नाधर्मभयभीरुणा।
आदिष्टा मार्गितुं सीतां धर्ममस्मिन् कथं भवेत्॥ ६॥

अधर्म के भय से नहीं, अपितु लक्ष्मण के भय से, भयभीत होकर जिसने हमें सीताजी की खोज के लिए भेजा है, भला ऐसे व्यक्ति में धर्म कहाँ हो सकता है?

भिन्नमन्त्रोऽपराद्धश्च हीनशक्तिः कथं ह्यहम्।
किष्किन्धां प्राप्य जीवेयमनाथ इव दुर्बलः॥ ७॥

बिल में जाकर रहने और प्रायोपवेश=आमरण अनशन का मेरा विचार प्रकट हो गया। नियत अवधि में सीता का पता न लगाने के कारण और इस मन्त्रणा के कारण अब मैं सुग्रीव का अपराधी भी हूँ। साथ ही मैं हीनबलवाला भी हूँ। ऐसी दशा में यदि मैं किष्किन्धा में जाऊँ भी तो वहाँ मैं दुर्बल एवं अनाथ के समान जीवन कैसे बिता सकूँगा?

उपांशुदण्डेन हि मां बन्धनेनोपपादयेत्।
शठः क्रूरो नृशंसश्च सुग्रीवो राज्यकारणात्॥ ८॥

धूर्त, निर्दयी और क्रूर सुग्रीव राज्य-प्राप्ति के प्रलोभन में मुझे गुप्त रूप से प्राण-दण्ड दे देगा अथवा बन्दी बनाकर कारागार में डाल देगा।

बन्धनाद्वाऽवसादान्मे श्रेयः प्रायोपवेशनम्।
अनुजानीत मां सर्वे गृहं गच्छन्तु वानराः॥ ९॥

इस प्रकार बन्दी बनकर कारागार में पड़ने और दुःख भोगने की अपेक्षा आमरण अनशन ही श्रेयस्कर जान पड़ता है, अतः हे वानर लोगो! आप सब मुझे इसकी अनुमति दीजिए और स्वयं अपने-अपने घरों को लौट जाइए।

विशेष:—इस विवरण से यह स्पष्ट है कि राजकुमार अङ्गद अपने पिता का सुयोग्य पुत्र था। अपने पिता का वध करनेवाले सुग्रीव के प्रति उसके मन में जो भाव थे उन्हें इस अवसर पर भावावेश में उसने प्रकट कर दिया। सच्चा पुत्र पितृघातक के प्रति कभी भी आस्थावान् एवं अनुरागवान् नहीं हो सकता। अङ्गद की परीक्षार्थ ही उसे रावण के पास दूत बनाकर भेजा गया था। यह राजनीतिक चाल थी। यदि उस समय भी अङ्गद सुग्रीव का विरोधी हो तो बाली के मित्र रावण से सन्धि कर लेगा। ऐसा होने पर वह विद्रोही की श्रेणी में आ जाता।

अहं वा प्रतिजानामि ना गमिष्याम्यहं पुरीम्।
इहैव प्रायमासिष्ये श्रेयो मरणमेव मे॥ १०॥

मै आपके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि मै किष्किन्धा में लौटकर नहीं जाऊँगा। मेरे लिए तो अब यहाँ रहकर प्रायोपवेशन द्वारा मर जाना ही श्रेयस्कर है।

एतावदुक्त्वा वचनं वृद्धांस्तानभिवाद्य च।
विवेश चाङ्गदो भूमौ रुदन्दर्भेषु दुर्मनाः॥ ११॥

इतना कहकर और वृद्ध वानरों को प्रणाम कर अङ्गद रुदन करते हुए भूमि पर कुश बिछाकर मरने के लिए उदास होकर बैठ गये।

तस्य संविशतस्तत्र रुदन्तो वानरर्षभाः।
परिवार्याङ्गदं सर्वे व्यवस्यन् प्रायमासितुम्॥ १२॥

अङ्गद को इस प्रकार मरने के लिए तत्पर देख सभी वानरगण आँखों से आँसू बहाने लगे और वे स्वयं भी मरने के लिए तैयार होकर अङ्गद को घेर कर बैठ गये।

उपस्पृश्योदकं तत्र प्राङ्मुखाः समुपाविशन्।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु उदक्तीरं समाश्रिताः॥ १३॥

वे सभी वानर वीर जल से आचमन कर दक्षिणाग्र कुशाओं को बिछा और स्वयं पूर्वाभिमुख हो समुद्र-तट पर बैठ गये।

मुमूर्षवो हरिश्रेष्ठा एतत्क्षममिति स्म ह।
रामस्य वनवासं च क्षयं दशरथस्य च॥ १४॥
जनस्थानवधं चैव वधं चैव जटायुषः।
हरणं चैव वैदेह्या बालिनश्च वधं रणे॥ १५॥

'यहाँ प्राणत्याग करना ही ठीक है' ऐसा कहकर वे सभी मरणेच्छु वानरश्रेष्ठ श्रीराम का वनवास, दशरथजी का मरण, जनस्थान का नाश, जटायु का स्वर्गवास, सीता का रावण द्वारा अपहरण और युद्ध में बाली का श्रीराम द्वारा मारा जाना आदि घटनाओं का वर्णन करने लगे।

◀ अष्टात्रिंशः सर्गः ▶ (३८)

सम्पाति का आगमन—

उपविष्टास्तु ते सर्वे यस्मिन् प्रायं गिरिस्थले।
हरयो गृध्रराजश्च तं देशमुपचक्रमे॥ १॥

पर्वत के जिस भू-भाग पर वे सभी वानर अनशन कर मरने के लिए तैयार बैठे थे उसी पर्वत पर गृध्रकूट का भूतपूर्व राजा भी आकर उपस्थित हो गया।

सम्पातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहङ्गमः।
भ्राता जटायुषः श्रीमान् प्रख्यातबलपौरुषः॥ २॥

उसका नाम सम्पाति था। वह अत्यन्त दीर्घ-जीवी वानप्रस्थी था। वह जटायु का ज्येष्ठ भ्राता था। वह श्रीमान् और बल तथा शक्ति में प्रसिद्ध था।

कन्दरादभिनिष्क्रम्य स विन्ध्यस्य महागिरेः।
उपविष्टान् हरीन् दृष्ट्वा गृध्रराजोऽब्रवीद्वचः॥ ३॥

महागिरि विन्ध्याचल की एक गुफा में से निकलकर और वानरों को वहाँ बैठा देखकर गृध्रराज सम्पाति बोला—

कोऽयं गिरा घोषयति प्राणैः प्रियतमस्य मे।
जटायुषो वधं भ्रातुः कम्पयन्निव मे मनः॥ ४॥

कौन मेरे प्राणप्रिय भाई जटायु के वध का वृत्तान्त कहकर मेरे हृदय को दहला रहा है?



इच्छेयं गिरिदुर्गाच्च भवद्भिरवतारितुम्।
यवीयसो गुणज्ञस्य श्लाघनीयस्य विक्रमैः॥५॥
अतिदीर्घस्य कालस्य तुष्टोऽस्मि परिकीर्तनात्।
तदिच्छेयमहं श्रोतुं विनाशं वानरर्षभः॥ ६॥

मेरी इच्छा है कि आप लोग मुझे इस पर्वत की गुफा से नीचे उतार लें। अति दीर्घकाल के पश्चात् गुण और पराक्रम में सराहनीय अपने छोटे भाई का समाचार पाकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। हे वानरश्रेष्ठो! मैं अपने भाई के मारे जाने का वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ।

अवतार्य गिरेः शृङ्गाद् गृध्रमाहाङ्गदस्तदा।
रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम्॥ ७॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया।
तस्य भार्या जनस्थानाद् रावणेन हृता बलात्॥ ८॥

उस गृध्रराज सम्पाति को पर्वत शिखर से नीचे उतार कर अङ्गद ने कहा— महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण और अपनी भार्या जानकी के साथ दण्डक वन में प्रविष्ट हुए। उनकी धर्मपत्नी सीता को रावण जनस्थान से बलपूर्वक उठाकर ले गया।

रामस्य तु पितुर्मित्रं जटायुनाम गृध्रराट्।
ददर्श सीतां वैदेहीं ह्रियमाणां विहायसा॥ ९॥

जब श्रीराम के पिता महाराज दशरथ के मित्र, गृध्रकूट के राजा, जटायु ने देखा कि रावण सीता को आकाश-मार्ग से लिए जा रहा है।

रावणं विरथं कृत्वा स्थापयित्वा च मैथिलीम्।
परिश्रान्तश्च वृद्धश्च रावणेन हतो रणे॥ १०॥

तब उन्होंने रावण से युद्ध करते हुए उसका रथ तोड़ डाला और सीताजी को रथ से उतार लिया, परन्तु वृद्धावस्था के कारण जब जटायु लड़ते-लड़ते थक गये तब रावण ने उन्हें मार डाला।

एवं गृध्रो हतस्तेन रावणेन बलीयसा।
संस्कृतश्चापि रामेण गतश्च गतिमुत्तमाम्॥ ११॥

इस प्रकार उस बलवान् रावण के द्वारा जटायु का वध हुआ। श्रीराम द्वारा उनका अन्त्येष्टि-संस्कार होने पर उन्होंने सद्गति प्राप्त की।

➤ एकोनचत्वारिंशः सर्गः ➤ (३९)

सम्पाति द्वारा सीता का पता बताया जाना—

इत्युक्तः करुणं वाक्यं वानरैस्त्यक्तजीवितैः।
सबाष्पो वानरान् गृध्रः प्रत्युवाच महास्वनः॥ १॥

जब प्राण-त्यागने के लिए उद्यत वानरों ने[१] इस प्रकार के करुणा-पूर्ण वचन कहे तब सम्पाति ने आँखों में आँसू भरकर गम्भीर स्वर में उन वानरों से कहा—

यवीयान् मम स भ्राता जटायुर्नाम वानराः।
यमाख्यात हतं युद्धे रावणेन बलीयसा॥ २॥

हे वानरो! संग्राम में बलवान् रावण द्वारा जिसके मरने का आपने वर्णन किया है, वह जटायु मेरा छोटा भाई था।

जटायुषस्त्वेवमुक्तो भ्राता सम्पातिना तदा।
युवराजो महाप्राज्ञः प्रत्युवाचाङ्गदस्तदा॥ ३॥

जब जटायु के ज्येष्ठ भ्राता सम्पाति ने इस प्रकार कहा तब महाबुद्धिमान् युवराज अङ्गद यह वचन बोले—

जटायुषो यदि भ्राता श्रुतं ते गदितं मया।
आख्याहि यदि जानासि निलयं तस्य रक्षसः॥ ४॥

यदि आप जटायु के भाई हैं और आपने मेरा सम्पूर्ण कथन सुन लिया है, तब ऐसी स्थिति में यदि आप उस राक्षस का निवास-स्थान जानते हैं तो मुझे

१. पूर्व सर्ग में जो कुछ कहा है वह केवल अङ्गद ने कहा है। यहाँ आदि कवि ने बहुवचन का प्रयोग सभी वानरों की स्थिति दिखलाने के लिए किया है।



बताइए।

ततोऽब्रवीन्महातेजा ज्येष्ठो भ्राता जटायुषः।
आत्मानुरूपं वचनं वानरान् सम्प्रहर्षयन्॥ ५॥

अङ्गद के पूछने पर जटायु का ज्येष्ठ भ्राता महा-तेजस्वी सम्पाति वानरों को हर्षित करते हुए अपने अनुरूप वचन बोला—

जरया च हृतं तेजः प्राणश्च शिथिला मम।
वाङ्मात्रेण तु रामस्य करिष्ये साह्यमुत्तमम्॥ ६॥

वृद्धावस्था के कारण मेरा सम्पूर्ण तेज नष्ट हो गया है। मेरे प्राण शिथिल हो गये हैं (अर्थात् जीवन में उत्साह भी नहीं है, अतः मैं विशेष सहायता नहीं कर सकता तथापि) मैं वाणीमात्र से श्रीराम की अत्युत्तम सहायता करूँगा।

तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन दुरात्मना॥ ७॥

रूप-लावण्य-सम्पन्न, सर्व आभूषणों से अलंकृत एक तरुणी को मैंने देखा था जिसे दुष्ट रावण हर कर ले जा रहा था।

क्रोशन्ति रामरामेति लक्ष्मणेति च भामिनी।
भूषणान्यपविध्यन्ती गात्राणि च विधुन्वती॥ ८॥

वह स्त्री राम! राम! तथा लक्ष्मण! लक्ष्मण! कहकर चिल्ला रही थी। वह अपने आभूषणों को उतार कर फेंकती जाती थी तथा अपना सिर धुनती और छाती पीटती जाती थी।

[illegible]ं तु सीतामहं मन्ये रामस्य परीकीर्तनात्।
[illegible]यतां मे कथयतो निलयं तस्य रक्षसः॥ ९॥

वह देवी बार-बार राम का नाम लेकर चिल्ला रही [illegible], अतः मेरा अनुमान है कि वह सीता ही होगी। [illegible]ब मैं आपको उस राक्षस के घर का पता बताता हूँ, सुनिए।

पुत्रो विश्रवसः साक्षाद् भ्राता वैश्रवणस्य च।
अध्यास्ते नगरीं लङ्कां रावणो नाम राक्षसः॥ १०॥

वह राक्षस विश्रवा मुनि का पुत्र है, कुबेर का सगा भाई है और लङ्कापुरी में रहता है। उसका नाम रावण है।

इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने।
तस्मिंल्लङ्कापुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा॥ ११॥

इस समुद्र-तट से सौ योजन की दूरी पर एक द्वीप है। उस द्वीप में विश्वकर्मा द्वारा निर्मित लंका नाम की एक नगरी है।

तस्यां वसति वैदेही दीना कौशेयवासिनी।
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः समावृता॥ १२॥

उसी लंका पुरी में पीताम्बर-धारिणी शोक-सन्तप्ता सीता निवास कर रही है। वह रावण के राजमहल में कैद है और राक्षसियाँ उसे घेरे रहती हैं।

इहस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा।
अस्माकमपि सौपर्णं दिव्यचक्षुर्बलं तथा॥ १३॥

मैं यहीं से रावण और जानकी जी को देख रहा हूँ क्योंकि हमारे पास दूर की वस्तुओं को ठीक-ठीक देखने के लिए सुपर्ण (सूर्य) विद्या से सिद्ध=निर्मित किया हुआ दिव्य चक्षुबल[1] (दूर-वीक्षण-ऐनक) है।

तत्रैव त्वरिताः क्षिप्रं विक्रमध्वं प्लवङ्गमाः।
ज्ञानेन खलु पश्यामि दृष्ट्वा प्रत्यागमिष्यथ॥ १४॥

हे वानरश्रेष्ठो! तुम लोग अपना विक्रम प्रकट करो और शीघ्र वहाँ पहुँचो। मैं ज्ञान-नेत्रों से देख रहा हूँ कि आप लोग सीता का पता लगा कर लौट आओगे।

---

[1] प्राचीन समय में आर्यों का ज्ञान-विज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। रामायणकाल में दूर की वस्तुओं को देखने के लिए **'चक्षुबल'** नामक यन्त्र का प्रयोग होता था। इस विषय में तिलक टीकाकार लिखते हैं—**"सौपर्णं सुपर्णलिङ्गकचक्षुष्मती-विद्यासिद्धिजं सा च विद्या बह्वृचब्राह्मणे तृतीयपञ्जिकायामुक्ता।"**



चत्वारिंशः सर्गः (४०)

समुद्र-पार जाने के लिए विचार-विमर्श—

आख्याता गृध्रराजेन समुत्पत्य प्लवङ्गमाः।
संगम्य प्रीतिसंयुक्ता विनेदुः सिंहविक्रमाः॥ १॥

गृध्रकूट के महाराज सम्पाति के ऐसा कहने पर सिंह के समान पराक्रमी वे सभी वानरगण एकत्र होकर बड़े आनन्द से उछलने-कूदने और हर्ष-ध्वनि करने लगे।

सम्पातेर्वचनं श्रुत्वा हरयो रावणक्षयम्।
हृष्टाः सागरमाजग्मुः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः॥ २॥

रावण के निवास विषयक सम्पाति के वचनों को सुनकर वे सब वानरगण सीता के दर्शन की अभिलाषा से प्रसन्न होते हुए समुद्र के तट पर पहुँचे।

आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः।
विषेदुः सहसा सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन्॥ ३॥

आकाश के समान उस विशाल एवं दुर्गमनीय सागर को देखकर वानरगण घबरा गये और सब एक साथ बोल उठे—अब क्या किया जाए?

तान् विषादेन महता विषण्णान् वानरर्षभान्।
उवाच मतिमान् काले बालिसूनुर्महाबलः॥ ४॥

उन वानरों को विषाद से भयविह्वल देखकर उन्हें धैर्य बाँधते हुए महाबली, बुद्धिमान् बालीपुत्र अङ्गद बोले—

न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तमः।
विषादे हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः॥ ५॥

हे वानरो! विषाद मत करो क्योंकि विषाद दोष-कारक है। जैसे क्रुद्ध सर्प बालकों को मार डालता है उसी प्रकार विषाद भी पुरुष को मार डालता है।

विषादोऽयं प्रसहते विक्रमे पर्युपस्थिते।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिध्यति॥ ६॥

उद्योग करने अथवा पराक्रम दिखाने के समय जो व्यक्ति विषाद करता है वह तेजहीन हो जाता है और उसका कार्य भी सिद्ध नहीं होता।

क इदानीं महातेजा लङ्घयिष्यति सागरम्।
कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसन्धमरिन्दमम्॥ ७॥

(यह विषाद करने का नहीं अपितु पराक्रम दिखाने का समय है, अतः बोलो) इस समय कौन महातेजस्वी इस समुद्र को पार कर शत्रुओं का नाश करनेवाले सुग्रीव को सत्य-प्रतिज्ञ सिद्ध करेगा?

को वीरो योजनशतं लङ्घयेच्च प्लवङ्गमः।
इमांश्च यूथपान् सर्वान् मोक्षयेत्को महाभयात्॥ ८॥

इस सेना में ऐसा कौन वीर वानर है जो सौ योजन विस्तृत समुद्र को लाँघकर इन समस्त वानर यूथपतियों को महान् भय से मुक्त कर दे।

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा न कश्चित्किञ्चिदब्रवीत्।
स्तिमितेवाभवत्सर्वा तत्र सा हरिवाहितनी॥ ९॥

अङ्गद की इन बातों को सुनकर वहाँ कोई किसी प्रकार कुछ भी नहीं बोला। सम्पूर्ण वानर-सेना में सन्नाटा छा गया।

स्तिमितां च परिश्रान्तां विषण्णां हरिवाहिनीम्।
जाम्बवान् समुदीक्ष्यैवं हनुमन्तमथाब्रवीत्॥ १०॥

वानरी सेना को विषादयुक्त, थकावट से चूर और चुपचाप देखकर जाम्बवान् हनुमान्‌जी से बोले—

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविशारद।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमन् किं न जल्पसि॥ ११॥

हे वानरकुलश्रेष्ठ वीर हनुमन्! हे सर्वशास्त्र-विशारद! तुम अकेले और चुपचाप कैसे बैठे हो? कुछ बोलते क्यों नहीं?

बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव।
विशिष्ट सर्वभूतेषु किमात्मानं न बुध्यसे॥ १२॥

हे कपिश्रेष्ठ! आपमें बल, बुद्धि, तेज और उत्साह अन्य प्राणियों की अपेक्षा बहुत अधिक है, फिर तुम अपने आपको भूले हुए क्यों हो?



वयमद्य गतप्राणा भवान्नस्त्रातु साम्प्रतम्।
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम्॥ १३॥

इस समय हम लोगों के प्राण संकट में हैं। इस समय आप ही हमारी रक्षा कर सकते हो, अत: हे वानर वीर! उठो और इस समुद्र को पार करो।

संस्तूयमानो हनुमान् व्यवर्धत महाबलः।
अभिवाद्य हरीन् वृद्धान्हनुमानिदमब्रवीत्॥ १४॥

जाम्बवान् के द्वारा प्रशंसा किये जाने पर महाबली हनुमान् ने अपनी महती शक्ति का परिचय दिया और सभी बड़े-बूढ़े वानरों को प्रणाम कर हनुमान्जी बोले—

बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा।
अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवङ्गमाः॥ १५॥

मैं अपनी बुद्धि से देख रहा हूँ, मुझे मन में पूर्ण विश्वास है, मेरी चेष्टा और उत्साह भी उसी प्रकार के हैं, अत: मैं सीता को अवश्य देखूँगा। हे वानरो! तुम प्रसन्न हो जाओ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ज्ञातीनां शोकनाशनम्।
उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान् हरिसत्तमम्॥ १६॥

अपनी जाति-बान्धवों के शोक को मिटानेवाले हनुमान्जी के इन वचनों को सुनकर वानर श्रेष्ठ जाम्बवान् प्रसन्न होकर बोले—

तव कल्याणरुचयः कपिमुख्याः समागताः।
मङ्गलं कार्यसिद्ध्यर्थं करिष्यन्ति समाहिताः॥ १७॥

हे तात! तुम्हारे कल्याण की कामना से और तुम्हारी यात्रा-सिद्धि के लिए ये समस्त वानर यूथपति यहाँ एकत्र हो ध्यानावस्थित होकर मंगल-पाठ किया करेंगे।

ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धतमेन च।
गुरूणां च प्रसादेन प्लवस्व त्वं महार्णवम्॥ १८॥

ऋषियों की कृपा से, वृद्ध वानरों के आशीर्वाद से और गुरुजनों के अनुग्रह से तुम समुद्र को लाँघ जाओ।

स्थास्यामश्चैकपादेन यावदागमने तव।
त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवितानि वनौकसाम्॥ १९॥

जब तक तुम लौटकर नहीं आओगे तब तक हम एक पैर से खड़े होकर तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे—अर्थात् तुम्हारे लौटने तक हम लोग कहीं भी नहीं जायेंगे, यहीं पड़े रहेंगे। अब इन सब वानरों का जीवन तुम्हारे ही हाथ में है।

॥ इति किष्किन्धाकाण्डम्॥

—o—

किष्किन्धाकाण्ड एक दृष्टि में—

सर्ग	४०
श्लोक-संख्या	८०४
टिप्पणियाँ	२७